





—०(-३-)—

मंगलाचरण

उद्धमान श्रिया शुद्धया वर्द्धमान नमाम्यहम् ।

उत्त तार्थमद्यापि यत्प्रमादात्सुखावहम् ॥१॥

स्वरूपादानाननिष्पाद्यात्मनस्तुत्रविधायिनिषद्विधायिप

— — — — —

— — — — —

— — — — —

— — — — —

किञ्चिद्वक्तुं यते ।

अर्थ—मान भी जिनके प्रमानसे सर्व प्राणिपोंक लिय सुखावह साथ (धर्म शामन) विद्यामान है उसे शुद्ध निष्कर्षक माच लक्ष्मीसे सुशामिन श्री नदायोर भगवान् को मैं नमस्कार करता हू ।

स्वरूप के भंग्य और पररूप के त्याग से उत्पन्न, आत्म वस्तु के लक्ष को प्राप्ति कराने वाले सम्यग्ज्ञान से विपरीत जा अनादिपरम्परा से चले आये

यद्यपि चिदचिदन्तरप्रदर्शनापलब्धग्रभाया दृष्टेरपि य  
 सत्त्व विना न क्षणमप्यास्ते करिचदात्मा ततश्चैतस्याप्यम-  
 नदृष्टिविषयवियोगाभावजसुखास्तित्वाभयत्यम् तथापि  
 दर्शनमोहादयानुदयोपलब्धकुत्सितसमोचानसञ्चया दृष्ट्या  
 जीवलोकोऽय दुःखसुखभाग्यमवति ।

अतो निरसिवादमेतत्-दृष्टिः सुखम् दृष्टिर्दुःखम् दृष्टिः  
 सपद्दृष्टि विषद्दृष्टि धर्मो दृष्टिधनम् दृष्टिर्दारिद्र्यम् दृष्टिः पुण्य  
 दृष्टिः पापमित्यादि बहुविधोपाधिशिष्टत्वेन विचित्रत्वात्तस्या ।  
 यद्यपि ममस्त्यागुन्यार्चिस्ततिदाहददहयमानोऽय ममस्तो

मिथ्याज्ञान के समर्ग में उत्पन्न विषय भासना में दूषण हो रही है ना मा  
 चित्तका ऐसे चारा गतिया के जीरा के दुःख निवारण करने में, आनुज  
 तारो को चोचन वाली विषय भासना की अंतरङ्ग कारणभूत आविष्टा  
 (अज्ञान) के नाश करने में पक्ष मंष्टि ही निश्चय में समर्थ है । असत्य  
 ऐसी दृष्टि को लक्ष्य कर उसके पापण न निमित्त कुछ कहने की प्रयत्न  
 करता हूँ ।

यद्यपि चेतन और अचेतन के प्रभाव से आविभूत हुआ है प्रभाव  
 नसका उसी दृष्टि के विषयभूत ज्ञायक माप के सत्त्व के विना क्षण भर  
 भी कोई आत्मा नहीं रहता है और उस ही कारण आज्ञान वाली  
 दृष्टि के विषयभूत सत्त्व के त्रियोग के अभाव से उत्पन्न होने वाले, मुख्य  
 के अस्तित्व में रुझान न रहना चाहिये तो भी ज्ञान माह के लक्ष्य और  
 अनुदय में प्रसन्न हो और असत्य सत्ता में पक्षी दृष्टि के द्वारा यह  
 जीव लोक दुःख और अज्ञान का पात्र होना है ।

दृष्टि

जल्लोहं सुखार्थं तथापि मत्पक्षमरूपोपायानभिद्यो निविर्कल्प  
२५५ वद यममुत्तमाम्यसुधारसास्वादविपरीतात्मभिन्नपरात्म—  
। १२ भ्रातिमूलरूपरागाप्त्यामलिप्सुर्दुःखम्पोपायानविन्दन् देवाधो-  
नमान्तदुरन्तविषयसनपरिणातमेव सुख मन्यमानोऽग्निश्वर-  
सुखनायकमद्दृष्टिपिरहितत्वेन परार्थित्वात्तदव्ययशर्मानर्हो  
भवति ।

आत्मार्थं स्वात्मानात्मसंस्तुययात्स्यायममममम  
त्वेन निहितमहमूलपरातुलोमप्रतिलोमपरिचयनाद्वाव्यवर्ध

इमंलक्ष्यं यद् यद् विसर्गान्तरहितं है कि दृष्टि ही मुख्य है, दृष्टि ही  
दुःख है, दृष्टि ही मर्त्य है, दृष्टि ही विपत्ति है, दृष्टि ही यम है, दृष्टि ही  
अधम है, दृष्टि ही घन है, दृष्टि ही दरिद्रता है, दृष्टि ही पुण्य है और  
दृष्टि ही पाप है । क्योंकि नानाप्रकार की उपाधियों में सहित हो  
जान में दृष्टि नानाप्रकार की होना है ।

यथापि अतुल्यत्वात् अपि किरणं समूहना गच्छेत्तलना  
हृत्वा यद् गगनं समारं सुखं चाहता है, तो भी सन्ने मुख्य कारणरूप  
और साधन ७ अपरिचित, विवक्षित स्वात्मसाक्षात्कार में उत्पन्न  
ममत्वात्पी अमृतक अभूतपूर्व ध्यान (अनुमूनि) में विपरीत, निजामा  
में भिन्न परमार्थ में पात्र ज्ञान वाली आत्मबुद्धि का भ्रम है मूल जिसमें  
ऐसी परमार्थ की प्राप्ति का इच्छुक, दुःखक स्वरूप और कारणोंको न  
जानना हुआ कर्माधीन, गया हुआ ही है परिणाम निजका ऐसे स्थिर  
विषयोंके सेवन की प्रवृत्ति को ही

विषादाधिभक्त्यनुद्धित्वात् आत्मनमुत्थयितुं तन्म ज्ञानदशन  
 परिणतिमेवम नादुल्लसत्तत्तु गुरु दितमनुत्तरन्नयमुत्त  
 भागभवति । अतस्मिन् रति-  
 मुपेहि यत्तुष्टौ त्रैलोक्यमभ्युत्तरत्तुमिदं नि मारमभामते ।  
 नि मारावभामतन्तडिपयिष्यमिलापा निता, तद्विपत्ती च  
 भावुताः सकलपलेश योनिविकल्पनालानुद्धूतेः परमोपेक्षाजन्या-  
 मरनागनरेन्द्रानुपलभ्यमानपरमानन्दमयवाम्यभावाभूतरममाभ्या-  
 दयतः संसारचारापा-

सुख मानता हुआ विनाश रहित सुख को बिद्ध बरायली ममोगीन  
 दृष्टिमे वचित होनेके कारण परको बाह्यन ज्ञान होनेम अनन्त सुख  
 को प्राप्त करनेम अमम है ।

परन्तु आत्माधी आमा तो निचारमा थीर अपनमे समस्त  
 परपदायकी यशार्थ दस्थितिक ज्ञानस सम्पत्त ज्ञानक कारण,  
 मोक्षनीय जनित परपदाश विषयक अनमूल तथा प्रतिमूल परिणमन स  
 सम्पत्त होने वाले हय विषादात्मक परिणति व श्रामोदन को बुद्धिफ  
 नष्ट होजाने से आत्मोद्भूत मोहरहित प्र नशन क शुद्ध कारणमनुक्त  
 अनादुल्लता स्वरूप सुख ही

सच्चा सुख है हिन है ऐसा मानता व अनुसरण करता हुआ अत्य  
 अत त सुख को अविचारी होता है । इसल व हे आत्मन् 'उम आम्चि  
 में अनुराग कर जिसम हाप्प । न पर त न लाक की मग्निपति स तुम्ह व  
 नि सार प्रतीत होती है । समस्त व ज्ञान व माररहित । त

स्वाराधारपारणा भवति । ननु नमस्ति सुरम भलापति  
 रोमाये । प्राणिनस्तु निमलचिम्बन दरुहपमपृष्ठ त  
 मद्बेदादयस्तद्देष्टव्यविषयपुष्टि धानि घने प्राशनिचिते  
 परार्थे मन्यते, रत पव च तत्प्राप्तमायक मित्र तदवाप्ति  
 विरोधक च शत्रु मन्त्रा रणेनाशादनाशविधौ कथमपि  
 मृत्वा प्रयततेऽहर्निश तदवाप्त्युपाय वा चि तय  
 न्त कुर्वन्तरचानतनन्मज्जलधौ निमज्जति । एवमनादित  
 प्राणिनः तिलाहारमयमैशुनपरिग्रहमज्ञासम्बधनशान्दहर्ह-

होन में तत्सम्बन्धों की निवृत्ति होना है । मन्त्रों के निवृत्ति होन पर  
 निवृत्त भयनन सम्पूर्ण कलेशों के सम्बन्धों निवृत्त काल के बीना नहीं  
 होन में दरुह नागद नरेन्द्रा का भी दुलभ प म ज्ञानमना में स्वतन्त्र  
 परमानन्द मय ममता सन का आभ्यास ज त ज्ञान मय प्राणा सभार  
 रूपी मार न अकार हु न सागान् पार नान में काम होत हैं ।

आत्मिक सुख आशाङ्गणक नाग नान पर ही होता है । ननु  
 समारी प्राणी चिन्तान्तर सम्बन्ध आत्म परिणामि को रक्षा भी नहीं करने  
 हुए मर्त्या वेदनीय नदय म ज्ञान दृष्टि में मर्त्या सुख पर नती  
 विषयाकी पुष्टिम हा वा कारण तथा आत्मा में निवृत्त मन्त्रों के ऐस  
 परपणार्थ में मुख्य मानत हैं और उन दृष्टिय विषयों की मर्त्या के सहायक  
 साधकों मित्र और विरोधकों शत्रु मानकर उनके संगों और विद्वान्  
 के घरते न ह । किसी भी प्रकार मन्त्र कर आ रत दिन रत विद्वान् घरते  
 हैं तथा न ह प्राप्त करन के लिये को दिवरात हुए य घरते हुए अनन्त

परिणतिं चाञ्छत स्वद्रव्यस्यायव्योप्यव्यारम्भमावत्सा  
 दर्शयति तदनर्हपरिणतीं व्यावृत्तीमवत प्यामज्ञाननिमुखा  
 ममरति । गुह्यद्वारास्त्राभ्यामवाधुममागमसांतमुद्रायलोका  
 नादिभि र्तमेनाप्युपायेन यद्येकारमभि स्वपरातरं जामीया  
 तदाय तत प्रभृति विहितविश्रमत्तलोका मन् सर्वापदामूलोप्य  
 वमानमापोत्सादविधिच्छाया या मफलोद्यमा भरति ।  
 अतएव भो आत्मन् ! यथाप्रदुर्लभ प्रमित्यसंज्ञितमनुप्यतार्यता  
 सुकृतजिनेन्द्रोपदेशश्रवणात्सर प्राप्य मुधा पीजनं मा यापय

अथार इम संसार सागर म डूबन हैं ।

इस प्रकार नीच अनादि मे आहार भय मैथुन और परिग्रह इन  
 चार महाभा के आधोन होकर उन परदार्थोंकी अपना इच्छाये याव  
 परिणमनका चाहते हैं । किन्तु पन्था स्वभावत अपन हो द्रव्य पदार्थों  
 म व्याप्य व्यावृत्तभावसे परिणमन करत हैं अनप्य प्राणी अपनी इच्छा  
 पुनः परिणमाने अभाय म व्याकुल होते हुए आत्मविज्ञानसे विमुक्त  
 होकर संसारम परिणमण करते हैं । यदि यह नीच गुरुपदरा, शास्त्राभ्यास,  
 माधुमभा जन, वीतरागज्ञान

आदि में अनक या किसी एक निमित्त म एक बार निचपर के भेद  
 [भेद विज्ञान] का जानने का माह्वान से उत्पन्न कलशकानाशकर समस्त  
 आपत्ता के मूल अध्ययमानमाय को उत्पन्न करने वाले कर्मा के क्षय कर  
 में सकल प्रयत्न वाला होता है ।

सकलक्लेश विनाशनममर्था स्वकीया सती दृष्टिभान्निर्भावय ।  
 किनारलोक्यन्ते बाला परालीयक्रीडामाधन मिथिद्रस्तु  
 स्वकीय मत्वा तदवाप्त्यभावे रोदत विलस्यतरच, तथैव  
 स्वात्मभिन्नमनात्मानमात्मीय ————— मयगम्य  
 स्वेच्छानुलोमपरिणत्यम रे विलसनासि । तद्विमुञ्च  
 परेष्व्वात्मीयाध्यवमानम् समुपदम चात्मानम् । स्वात्मबोध-  
 च्युतिमूला पीडा स्वात्मबोधादव विनश्यति । कथमनन्तशो  
 भुक्त्योज्झितेषु पुद्गलेषु जडेषुनुरज्य जडत्वं विमर्षि ।

इसलिम \* मात्मन् ! उत्तमोत्तर दुत्तम 'न' तस, मना, मनुष्य  
 आयक्षेत्र जलम सुदुर्लभ 'न'म, निन्द्यापदग शरण न अरसर धान कर  
 व्यन पावन को मत गमा श्रीर, ममस्त न देश नाश नरन में ममध अपनी  
 समा चीत दृष्टिना प्रगट कर । अगोशदानक किसी दूसरे जलक का  
 पस्तु का अपनी मान नर उन न पाकर दुखी  
 होत हुए, रोने हुए वही प्रकार तू ममारी भी अपने मे भित्त पर वनार्थ को  
 अपना मान नमे न पाकर वा अपने प्रति वृत्त नसका परिणमन देग कर,  
 दुखी होता है । 'सलिय परपन्ना' में आत्मीय बुद्धि को छोड़ तथा निच  
 परप म ही रमण कर । निनात्मबोधमे भ्रष्ट गेनेमे 'तत्त' बताश  
 आत्मज्ञानमे ही दूर दाना है । अतः तमार मोग कर छोड़े हुए जड  
 पुद्गलोम अनुराग कर क्या स्वयं जड [अज्ञान] इनता है ? हे आत्मन् !  
 परपूर्ण पदार्थोंकी स्वाभाविक परिवृत्ति [परिवर्तन] दानेमे तू उनम म  
 क । को भी अवयवा करने म नवीन बनाने म,



आत्मन् ! तर्थायाणां स्वेषु परिणतत्वेन कचिदप्यर्थमयमुपा-  
 पादयितुं भङ्क्तुं रवितुं स्याजयितुमाविर्भावयितुं वा च न  
 शक्नोति केवलं विधिराकनमोददिनिमित्तं। स्वयोगोपयामो  
 विधिरन्धेन निबधनौ विदयाति । न हि कुम्भकारः स्वशरीरा-  
 त्कथमपि कुम्भमुत्पादयितुं शक्तः, केवलं कुम्भनिर्मितिनिमित्ता  
 स्वशरीरचेष्टा विदयात । वृक्षस्य तु वस्तु वनं कृमोपादानमु-  
 च्छिन्नायामेतेषां पादस्तथैव च पुद्गलानामभिन्नपर्यायाणानाव्यव-  
 हार्यावस्थापन्नानां तदुपादानपुद्गलेष्वेवावपादं ततस्तेषामवश्यं

तोड़ने में, बचाने में, परापर मिलानमें समर्थ नहीं है।  
 जल जिस विषाकमें उत्पन्न मादिक कारणों अपने मनस्वी काय के  
 परिणतिरूप योग तथा भावपरिवर्तन रूप व्यवहारों के कारण  
 कारण बना रहा है। जिस प्रकार कुम्भकार अपने शरीरमें किमा भी नर-  
 घड़े की उत्पत्ति नहीं कर सकता जल में निमाण में कारण भूत अपने  
 शरीर की चेष्टा करना है, घड़े का उत्पन्न तो वस्तुतः उनकी व्यवहार  
 कारणभूत मिट्टीमें ही होता है यही प्रकार—

अनेक रूप में व्यवहार में आने वाली विचित्र रूप में उत्पन्न वाली  
 पुद्गल की अनन्त पर्यायों की उत्पत्ति स्वयं पुद्गलों में ही होता है। इस-  
 लिये तु उनके अपर्यभागी अपने अनुकूल प्रातः कुछ नाना परिणामों  
 कर स्वयं दुखी मत बना।

अभिभावुक आत्मन् ! जगत के समस्त चराचर पदार्थों का परिण-  
 तेच्छानुसार रीति तो दूर रहा [अर्थात्, उनका जब जिस प्रकार

भाति नानापरिणामनमलाय नानुचीमय । मायुक १ आस्ता  
 त ररुयार्थाणा १ ॥ अनुवर्ति परिणमनम्, रुचिदम्प्यर्थ  
 नारचदात्मा ययमपि परिणमपितु न शक्तस्तस्मात्स्यामिलोप-  
 रणमनयोऽर्थाप्यव्यापकमायामादाभिलाषानुलोमनी परपरिण-  
 मता नयतीति उक्तुः इति मयगम्य निर्विकल्पविज्ञानधनरमा-  
 न दमयशुद्धरूपप्रत्यक्षावसिद्ध्यावृणुष्वल्लक्ष्यमृताशुद्धपरि-  
 णतेरीनामभिनाया व्यावर्तय । धन्यास्त महाभागा ये  
 प्राक्कमुक्तमस्तुनमश्वावरिषयार्थानुपपुज्यानुपभुज्या स-  
 र्वात्मदक्षिणार्थैरनायतप्याजननीमभिलाषा स्वशुद्धद्वयवि—

परिवर्तन होता है वह स्वयं ही होता है । हम उसी कारण वारण न  
 पन ही स्वयं के गुण धर्म हुआ करते हैं । किसी तरी इन्द्रानुमार  
 जगत का पारलमन होने की ता क्या है क्या ? किन्तु अपने पान के  
 भी पान का करने की इन्द्रानुमार का भी आत्मा परलमन करने में  
 सनद नहीं है । म जय भवता अभिनाया और पदार्थ का परिणमन  
 इन दोनों मव्याप्य व्यापक भाव न होने से अभिलाषा के अनुमार पर  
 पान का परिणमन नहीं होता है इस चतुर्विधि को जानकर निविकल्प  
 पिता उन परमान मय शुद्ध आत्मरूप से विपरान्त ना मविकल्प तथा  
 आकुलता ही है शरीर निमग्न पत्र वतशा का मूल ना अशुद्ध परिणमन  
 हमका गीत कारणभूत अभिलाषा को दूर कर ।

य महान् पुरुष धन्य है । जा पूर्वोपाजित पुरायादय स सुलभ पचे  
 दिव्या के विषय को भोग कर अथवा विना भाग दूसरी सम्पूर्ण प्राणियों  
 को सतन करना ही जिस के जाना जाय है, ऐसी तृष्णा को पैदा

विष्णुमोहाद्यन्यमानोद्धृत्ययाभावननिर्विघ्नं यथापि गतिरु—  
 पानन्तमुत्तरं च नामभिर्मयमानास्तस्यै चनाजतिं दत्तवत् ।  
 धन्या च सा सती दृष्टियैव सादाच्छिन्नरमापरिग्रहप्रयत्नपरा  
 स्वसमिन्निजममरममहाधनयोगिनो विपिनं शमनं नैवाऽपरत्वं  
 प्रदानप्ररणचतुर्भिः शराधनारागमनुराधयन्तो वर्षागीतातपच-  
 राधाभिमेत्यमित्यमतयमिदितोपमगं चतुस्त्रिपामादिवेदनाभिर्मना-  
 गपि न खिन्दति । ये स्मिन् भावद्रव्यादितद्वैविध्यममारम  
 वगम्य “प्रचालनादि पङ्क्तय दूरादम्पर्शनं वरम्” इमा नीतिमनु-  
 सरन्तो वस्तुतोऽनादित्यन्तमपि भावताऽपि सत्यं शिर शिराय

याली आशा का, अपन रहस्य में छिप मोह आदि विकारों के अभाव में  
 उत्पन्न महान निर्द्विषय विज्ञा स्वरूप अनन्त सुख को पुरान वाक्की भावत  
 हुय उम जलानलि ( त्याग करना ) द चुन है ।

यह समीचीन - ७ भाष्य है किमपि प्रमाण कि शिखराणी  
 को धरण करने में प्रयत्न शील, + सधरुण यय समता हम है मन्त्र  
 धन लितरा तेम योगी जन पका न किन धन में छलप। शमन म  
 मुक्ति प्रदान करने में ममर ज्ञान, २५३, + धरुण तप रूप कार आराध  
 नाश्चा सा भात हुण, शीत - ध्य परमात - य वाधाया + तया मनुष्य,  
 दय, पयं तियञ्चा द्वारा स्त्रिय गय उममर्गो आर भुरय प्यामादि जय  
 वेदनाश्चा क कारण नरा भी प्रिलित पयं मन्त्रिग नही द्या + ।

ये मन्त्र पुण्य मात्र + य + क द्विध ममार का अगार जानकर  
 कीपड़ सा लगाकर ध्यान की रूपा उम न मन्त्रादी च + पि + रस  
 नीति का अनुसरण करते हुण, या। मरु अनादि मरु नाथ छू ।

शिव म ५ परिसन्न, त नु ग्लाभ्या. मन्त्येय परच तेऽपि स्तुत्या  
 २ प्राङ्मो, १) दयैचित्र्यमशन । विविधकरखविषयानुपभुजन्तोऽपि  
 नि.मेव प्राप्य विरक्ता भवन्ति ।

धन्या हि य सुर्लक्ष्मी मुनिर्यो निवृत्तनाकारपरिणताम्बुनाह  
 विलयायताम्बुनिमितापना नै राग्यस्य मन्त्रिनाभ्याख्यानेन  
 पुत्रात्प्रतिप्रभवेऽप्यीकृतगज्यभारस्य अथ सुतोद्वयश्रवणममय  
 पराङ्गीकृतनैर्ग्रन्थपदभ्य स्वपितुर्महापुनेदर्शनाज्जातसमार  
 शरारविषय नन्द प्रारब्धयौवनाऽनीप्सितस्वमानिनिगर्भम्य-  
 सुताम्भारलोम्ना नियमितवर्षाषोणो ध्यानभ्य स्वामिसुत-

दृष्ट्या हा ५ १८ तु अत्र स भी त्याग करक शिव स्वप्न मुख को रक्षाय  
 क लिय स्वप्न परिणामी १८३१ हु मयन करत हैं व ना प्रशस्तनीय हैं ।

किन्तु २ भा स्तुत्य २ ३ पूर्व मधिन माहात्म्य क यश अनन्य प्रकार  
 क श्रद्धयाथा ना मयन करत हु भी निर्मिन्न पाकर विरक्त हो जाते हैं ।

गह परिणत किन्तु चम भर म ही नाश हा ना बाल मय नो  
 दयकर विरक्त, किन्तु मा मय की प्राप्ति पर मन्त्र किया ह राज्य  
 भार को विमान और पुत्र प्राप्ति समाचार पात ही मुनि नीचा ले लेन  
 वाले मन्त्र मुनिन्य अपने पिता क दर्शन म उत्पन्न दृष्ट्या ह मसार शरीर य  
 विषयों म वैराग्य निमको तथा योगन अयस्या का जहाँ प्रारम्भ हो चुका  
 ऐसा पूणयुग, अपनी पत्नी क गम म स्थित शिशु क जन्म की ओर म  
 न्नामान, पूर्वमय म अपने पात और पुत्र के नियोग म उत्पन्न आतध्यन  
 पूर्वक मर कर अशुभ परिणामों के वश व्याधयोनि धारण करने वाली  
 पूर्वमय की माता द्वारा स्वर्ग के चार दालन पर भी उत्कृष्ट वैराग्य बल ॥

नियोगहेतुस्तेऽपाननाताततक्रयाऽशुभमात्रमपादनापल दया-  
 धूमरया मातृचरया विदीयमाणोऽपि परमप्रदप्राप्त  
 वैराग्यरत्नेन क्षणमपि किञ्चिदपि स्नानुपपादयमान  
 परमानन्दसदोहास्पदा परमनिवृत्ति लेभे । यथाहम मत्सुरात्म  
 महाभागो या नमदानदोनीग्नारदेताऽधानविधादतनदी  
 पुलिनद्वारस्त्रयन्तरीप्रवाहगाधनं विनाचनपरय नमदामप्ययेन  
 दशाननपितामहहृन्ननप्रत्यपचिर्जीर्णरावणेनाञ्चो जित पुनश्च  
 विश्वनिरपक्षधुमहासुनिना मदुपदिष्टेन स्वतन्त्रादृत प्रशस्त  
 याऽऽहतो राज्यमपद्भोगाय स्वम्बुध् परिणयनाय बहुशो

क्षण भर व क्षिय भी अपन स्वरूप म विचलित नहीं हान वाला न  
 सुकीर्ण मुनि वय है तो उस प्रकार वैराग्य का प्राप्त होकर अलौकिक  
 अत्यर्णनीय आनन्द की भणार स्वरूप मुक्ति का प्राप्त हुआ ।

यह भीभाग्यशाली महत्परिण वय है ना अपन पिता मह  
 [बाबा] ने प्रतिकार करने की चेष्टा करने वाले मया नमना न रात्रिय  
 के साथ जल काड़ा करने से दूर हुए तथा न नार मे बन्ने वाले न प्रश  
 से बाधित और नमदा के नीचे स्थित तीन पुत्रा म तत्पर अतः तर कुपित  
 हुए रात्रय न द्वारा युद्ध म पराजित हुआ किन्तु संसार के निरपेक्ष व पु  
 महा मुनि के उपरा म पुन स्वतन्त्र किया गया और उसी समय  
 सत्य अनेक जगमात्मक रात्र्या म मन्त्रजित गना हुआ छाड़ा हु  
 अपनी राज्य संपत्ती को ग्रहण करने के लिय और रात्रय की लडना रा  
 विवा ने के लिए अनेक बार शक्ति प्राप्त हुआ, पहिले म भा विपुल  
 सम्पत्ति को हारने म आइ होन पर भा कपना नय अभिलाषा का मूला

निवेदितोऽपि पूर्वतोऽपि त्रिपुलमपदा करतलगतत्वेऽपि रूप  
 नाकलितरुनामभिनापा मूलता विमेष मगनमयी निनदीवागा-  
 दतवान् । भो आत्मन् ! विषयमेव न निबध । विषयस्यैव नाद्भूता  
 तृष्णाऽस्तु मतिरहितलपरिवागभविच्छास्तिरम्या दुर्निपाता  
 भोगभिलाषा दुःखना दूरत पय पन्थियज्य स्वमवेदननिमित्ता  
 स्वमवेदनाद्भूता मनुष्टिरुमतिर विगिरिवारामनन्तसुखप्रदा  
 समता भज । यथा यथा सुगन्धम्या अपि पश्चाद्विषया अनभिल-  
 पिता भविष्यन्ति तथा तथा वर्जगमूला समताप्राणास्पति, यथा  
 यथा मा प्रीणास्यति तथा तथा दुरन्तम्यमात्र विषया अरोच्य

स्वेप्तेन कर मगलमया निनदीवा का प्रणय करताभवा ।

“आत्मन् ! विषयमयन म कायभाभूत तथा विषय मयन म  
 स्वयम्, तृष्णा आगत, उतुष्टि और पारय” ॥ ॥ ॥ ॥ निमका, विना  
 निचार किय सुन्दर लग्ना गाना अयन गाना ॥ ॥ फल निमा ऐसा  
 नारक की दुष्टिना (दरवा का रमाल) का दूर म ॥ ॥ गकर आत्ममयन  
 का प्रधान नारवा रवात्म मयन म ॥ ॥, म गप सुगुद्ध हान हा है  
 परिवार निमका ऐसा अनन्त सुगन्ध का देने वाली समता का आगय ल ।  
 वैम वैम सुलम्भ भी पर्वत्रिया ॥ विषय अभिल न लगेंगे वैम हा  
 समान सुगन्ध के कारण समता तुम्हें प्रयत्न करेगा । जैसे ० तू समता  
 रसम तृप्त होगा वैम ० दुःख हा है परिवार निमका ऐसा “न्द्रिय विषय  
 अरुचिकर प्रदान होगा । निरुचय हा विषयो ॥ अरोच्य हान पर थोड़े हानि  
 नहीं होती है यदि नित्य व अनारुलना हो है लक्ष्य निमका ऐसा अनन्त  
 दुरमय परमात्मतत्त्व की प्राप्ति होती है ।

मरिष्यान्त । न यत्तु विषयाणामरान्यत्रै कानित्वनि  
 प्रत्युत शारतिमानादुनत्वावगतान तमौल्यमयारमत्रक्ष त्वा  
 क्षिभरति । न चाननुभूतमाम्यरमास्वादाना त्रेखुब्धानामनुद्रा  
 नामप्रियत्वे माम्यसुत्रामागरस्य मइत्त चायन । नाज्जलत्रुप्या-  
 ज्वलनज्वलन्त प्राणना ते रुमपि यामस्तुमोदगहनगहन  
 रम्भमन्त, माम्यसुधाविधास्तारमरि मम्त्राण शिररमायर  
 मद्वाभागपीतस्यमभित्तिजसुत्रामतार्कीणरसलवमा, पियान्त ते  
 जननजरान्तक लुतपायस्मयस्मयमयमाहभयार(तप्रियादानद्रा-  
 चिन्तादिदोषप्रित्तममृतत्वमयान्तमुखमगिना भवान्त । हा  
 कइम् इन्त यदन ताननदशन मुखराकृतमय

समता रम क साद के अमुभय म रहित पर लेर पयाथा य लान  
 म हा फम हृण भूर्ग पुरषा य लय अप्रिय दान पर भी समतामन का  
 महत्त्व कम नही जाना ।

भभक्तता हुई मृष्टा गान म जलते हुए महा मयागर माविष्ट  
 संसार घन में चरकर लगान याल भी जो प्राणीसमनामून मागर क  
 नितार कर पुरुरर शिररमणी ना परण करन वाले भावधान पुरुरा  
 द्वारा किया गया है आत्माइन निमरा गेम रममग्न जनिन माम्यमुधारम  
 की एक नूद भी पी लेने हैं वे शीघ हो

मजरा मरा भूय प्याम त्रिस्मय अरनि ग्न निद्रा चिन्ताणि अष्टा  
 त्वा त्वा मे रन्ति अनन्त अग्निनाशा सुग्न क अविकारा हात हैं ।

हा । ग्न है कि यह आत्मा अनन्त ज्ञान दशन मुख्यात्मक  
 प्रचिन्त्य अमीम शक्ति युक्त होकर वे भा निजस्वरूप का प्राप्ति करन के

स्वरातिवृत्तत्वेऽपि महत्त्वम् प्रतिपादयन्नुक्तं न चैवम्  
 न तथा परिणमत । मो आत्मन् । एतन्नास्ति न चैवम्  
 बाधान म्यादन्तोऽपि प्रतीयन्ते मत्त । न चैवम्  
 खिलपरद्वयेषु सम्यगे बाधानात्मन् न चैवम्  
 सम्यविषयार्थसार्थाणां परिणमत न चैवम्  
 मान जगदतत्त्विल देहात्मदृष्ट्यानां विधान म् न चैवम्  
 स्मन्येयात्मदृष्ट्यानां परितोनि भाग्यद्वय म् न चैवम्  
 भवतः प्राग्गदा मप्रभ्रमनदुसगिद्विद्वत् इत्यम मत्र  
 म् न चैवम् जगदाद्विनाशक लोकोत्तर पालेद चैवम् नृत्तिन

निय सुख की कथा की अपेक्षा आत्मन् न चैवम् सुखी होने का  
 परिणाम न ही करता ।

इ आत्मन् । सुख २०१ इतिमेति । न चैवम् न ही  
 तथा नो नाश न हीन प्राला हा । निष्क जगत्त्विल देहात्म  
 अनिरिक्त सभाजनानाया अवस्था न चैवम् विद्वत्  
 परप्राग २ मत्त न चैवम् । त्यत एमा क दृष्ट्य न ही, लो माद्वत्  
 म २ ( अत्रमन्ति ) न चैवम् । त्यादि निष्क जगत्त्विल देहात्म  
 लगात वाले के विषयभूत पदार्थों का नाश करने वाला  
 वह पर तरा आधिपत्य नहीं है । यदि वह आत्मन् हो तो  
 ही निरर्थाधि एव आन्तरहित सुख प्राप्त हो सके  
 ऐसा न ही है ।

हरयमा गह । न चैवम् आत्मन्  
 वी गता जीवों क ।

चंद-  
 ोड्य  
 सन्  
 न्या  
 वी  
 शी-  
 रा-  
 पु  
 श

वरी  
 उ म

प्रका  
 शाय  
 ॥दि

दि  
 ॥दि  
 ॥दि





सयोगोऽत्र एव । विविधसादृश्यजनमचरणेन सुरभितकुसुमचट-  
नालकरणेन स्वच्छमनोरमवनस्नानेनातिलालितोऽपि दहोऽप्य  
क्षणमात्र एव जीयत चरुस्थितागपि विविधामयाधिष्ठानं सन्  
पीडानिबन्धनो योगवीर्यवान् । यत्र चोत्सर्गधिनो दहस्येय कथा  
तत्रात्यन्तविचित्रा सपट्टलुब्धमरुतिलतलक्ष्मीनाम्नी को वर्णयेत् ॥  
आरम्भे मनापिनीं प्राप्तागस्तृप्तिर्वाप्ययन्त दुस्त्यजेय लक्ष्मी-  
श्चक्रिणा एवयतामपि शोचन्ती नामासन्ताऽयेषा केषां यद्वा-  
निराश्या योगमिष्यति । अतो मुमुक्षा ! एतेष्व्वात्मविरिक्तेषु  
परैर्वर्षेषु प्राटममतामुच्च । नात्र जगतीकोदे जन्मनरामरण

की समाप्ति हान पर निम्न दह म नीव से अलग हा जायगी ] फिर तू  
ही बता कहा विग्राम करना दे ।

आयु शुक्ल के पल की तरह क्षण भर फिर जान वाली शरीर  
समुद्र की तरंग ममान, और चट्टिया के विषय विपत्ती की तरह क्षण भर  
में ही नाश हो जाते हैं ।

भाग में एक राय चान वाले यात्रियों का संयोग तिम प्रकार  
एक क्षण भर के लिए जाना है उनी प्रकार इस संसार में बहुत धांधलों  
का समागम भी अग्यायी एव क्षणिक है । नाना प्रकार के स्वादिष्ट  
व्यंजनों में

सुगन्धित चन्द्रनादि द्रव्या के मयन में, स्वच्छ मनाहारि जल स्नानादि से  
लालित एव पोषित भा यह शरीर क्षण भर में ही विनष्ट हो जाता है ।  
तथा पत्र तन साथ १० ३ नरक तर अनेक प्रकार की पीड़ा का आश्रय



व्यस्योयोग एव रतिमुपैहि तमेव चानाकुलत्वलक्षणत्वेन  
स्वभागतोऽमुस्वभागाभागात्सताप्यसतोपमागर विज्ञाय तत्रैव  
तुष्टिमपि भजत ।

यथाहं त्वमे सत्ते समारिणश्चातुर्गत्यक्लेशमुपलभमाना  
अनन्तद्रव्यलक्षणालभ्यमागपरिवर्तनानि कुर्वन्ति । नात्रैव केचि-  
त्परमाणु मन्त्रिये तथाऽनन्तशो न भुक्तोज्झितास्तदप्येतेषु-  
जडेषु स्पृहालुर्भवति । न चात्र त्रिचरवारिरादधिरत्रिशतरज्जुन  
एकगमाया त्रिनगत्या मिथित् चेतमस्ति या प्रदेशानुक्रमेणाप्य-  
नन्तश पर्यायेण न ज्ञातो न मृतश्च हा कष्टम् तदपि यत्किमपि

यहां से प्रमाण करने तक तरे साथ ही चारोंगे । सभी प्रकार में शरण  
रहित इन गहन संसार में म प्रतिष्ठा, आदर सम्मान कीर्ति, प्रशंसा  
आदि की अभिलाषा करना दुर्निवार माहाधकार की लीला मात्र है ।  
तू ॥ घना 'पूषापाजित शुभाशुभ कर्मादय जय सुख दुःख क अरसर  
पर इन प्रतिष्ठा सम्मान कीर्ति आदि ने किन ० की सहायता की ? वस्तु  
स्थिति तो यह है कि अपने स्वयं साधन में तत्पर स्वार्योच लोग दूसरों  
की भूठी प्रशंसा पर यह मुलायम डालकर उनका संसार का प्रधान  
कारण जो मोक्षीय कम उसके बंध होना क ही साधक होते हैं । अतएव  
हे आत्मन् ! परनिमित्तक शुभाभाषयोग में मित स्वार्थ ज म आत्मानु-  
भूति को ही शरण मानकर अपने मन की आत्मानिरिक्त पर पदार्थों से  
हटा कर आत्मोपयोग [निचानुभव] में ही दृष्टांत हो । अनाकुलता  
स्वरूप, दुःख मात्र से रहित उस अपने निज स्वरूप का ही मनाप समुद्र  
जानकर वसी में नृप होकर रमण कर ।

चेष्टाभवलोकयितुं गन्तुं तत्रैवोत्पत्तुं दुर्ध्वं ह्यसि । नागानन्तो  
 तत्सर्पिण्ययमर्पिणी-मय रूपफलममृदलवर्णं दर्शयते । तस्मिन् चित्त-  
 कालसमयः यदा त्वमनन्तशा न जातो मृत । न च गयस्त्रिंशमा  
 गरोपमेकं निशत्मागरोपमा शिष्योपमा वा कानिद्वयस्थिति  
 रायुः स्थितिर्वा या गतिप्रमण्यैकममपरद्विप्रमेणाप्यनन्तशा न  
 प्राप्ता । तथा च ससरणनिबन्धनपरिणामाथानानि चैकैकारि  
 भागपरिच्छेदेष्वद्विप्रमेणोत्पत्तावनन्तशो लभ्यन्ते । तयानि दुःख  
 हेतुमानि तानि तान्येन निमित्तानि लालुम्यस । अथवा निगोत  
 शरीरेभ्योऽन्यसमयत एव प्रत्यग्भवनाय समानं ज्ञायामयेत

हे आत्मन् ! तू इस प्रकार चिन्तन कर । मेरी तरफ़ से समस्त  
 संसारी जीव क्षणभंगि सन्ध की नाता प्रकार के अमर्य कलशा की भाँति  
 हुए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव आकात्मक अनन्त पक्ष पराधनन करते हैं  
 तान लोक में तेरा कोई परमात्मा नहीं बचे । तू हूँ अतन्तवार भोग  
 कर छोड़ा न हो । आश्चर्य है ! जो तू हूँ तू वनार्धम कहा लगता  
 है ! मान सौ तैलालीम रज्जु प्रमाण सम तीन लोक में तेरा बरा भी क्षेत्र  
 नहीं है न ? अनुत्तम ग तू अनन्तवार कर्मा नवा मरा न हा । मरान  
 रोद है ! जो तू हूँ पगन के किसी भी क्षेत्र पर अनन्त रा रण नहीं की  
 तथा अनन्त होने की दुभावा करना है । न ही अतन्त त्वर्पिणी अवस  
 पिणी के समूह रूप पर काल प्रमाण अनन्त कल मण सह भी  
 ऐसा था है ।

अतः तू अनन्तवार पक्षा न हुआ हा और न मरा हा । नगा ३३  
 सागर अध्याय ३१ सागर प्रमाण २ पक्ष प्रमाण रेभी कभी भव

द्वि निश्चितमेव यस्मिन्नाहप्रतिपादितरीत्याऽन तपश्चपरिवर्तन  
 मुखेन दयै विज्ञापितोऽनतमाल क्लेश भोगभोग निःश-  
 रित । हे आत्मन् ? यथाऽऽत्मातिरिक्तमर्थाणां परि-  
 णतौ तत्र स्थामित्य न वर्तत तथाऽऽत्मपरयतावेपामर्थाणामपि  
 स्थामित्वं नास्ति । मृधा पिशुनाममुभयमपि । नहि कश्चिदर्थ  
 स्त्यां प्ररयति य मा स्पर्श मा रम मां । नघ मा परयमा टृणु माम  
 नुरज्यन्तेति । त्वमर म्बुद्विदापस्य प्राग्निदितभागाविशुद्धिद्वद  
 वनिधर्नरिपिपाकमये तानिप्यानिष्टा-वा रू पन्थ्य स्वतन्ता चप  
 यमि अतो द्रव्यान्तरस्य द्रव्यान्तरस्यात्याद्य ममावोच्येदाभावात्

प्रति अथवा आयुर्गति शेष नही यथा निम नरकात् चतुर्गानक्रमम  
 तथा समयवाद्ध क्रममे तून प्राप्त न किया है । समार क कारण भूत - ।  
 अन न परिणाम स्थान है - नम म एक भी । म नही यथा निम मने एक  
 एक अविभाग प्रच्छिन्न है । वृद्ध क्रममे अनन-पर प्रप न किया हो  
 तो ना दु स्य न - रानक अन नवार भ गे दु स्य कड कारणों के तिय लान  
 करना है - यह अपनाना चाहता है ।

अथवा निगन् गरीरा म म थोड़ ही समय मे निवर्तन न  
 मं रता की दशा म भा यह ना निश्चय ही है कि मिद्वान्त म कदा ग  
 रीति क अनुमार अनन पश्य परिवर्तना का शैली मे व्यतीत होने वाहा  
 मदज्ञ दय क द्वार बनाया उनना अननकाल क्लेश को भोग भोग क  
 नि ल दिया ।

■ आत्मन् ! निम प्रकार आत्मानिरिक्त समस्त पदार्थ समूह क  
 परिाजन में वेरा दाह अ-वा प्रयुक्त - ही है उसी प्रकार निमपरिवर्तिम-

मयेनाश स्वेच्छति वा स्वपरिणामेनेव निश्चयदृष्ट्या व्यस्य  
 निष्कलङ्कपरमशातपरात्पर—विज्ञानदर्शनमुखशक्तिमयस्वरूपाद्  
 निरन्तरे परद्रव्याश्रयमूलक तावदानाम्प्रयपानप्रवृत्तिनिरति  
 लक्षण यत्न विधेहि । अन्यथाऽस्मिन्नगरणमसारे यत्किमपि  
 निमित्त प्राप्य स्वमेव कैवल व्याकृतीभयन् वम्भमिष्याम । न  
 ह्यन चित्ता कृत कर्मोन्मो मुहुर्न सगिपात्तजिजरणैरुकार्यस्य  
 रमादयस्य वृन्त वृन्ताद्विश्रष्टस्यकलस्येव प्राक्नभ्यन्वाचेत्ययप्रभाय  
 कत्याह । लोकेऽपि विस्फुटमगलोरपत एव ज्वरजनितशरीर  
 उच्यते स्वार्थविषयोपभोगविद्विमाधनत्वेन पुनरुल्लादिभिर्बहु-

तरे न भिन्न इन परपदार्थों का आधिपत्य या घटपारा नहीं है । व्यव ही  
 तू विश्रुत हो रहा है ।

निश्चय ही कोई भी पदार्थ तुम्हें एसी प्रेरणा नहीं करता कि 'तू  
 मुझे दू मेरा स्वाद चख, मुझे सूँघ, मुझे दख, मुझे सुन और मेरे से  
 अनुगत कर । तू स्वयं ही अपनी अज्ञानतावश पहिले किये हुए परिणामों  
 की अविशुद्धि से बद्ध हुए कर्मों के विपात्र काल के उन पदार्थों को दृष्टा  
 निष् मानता हुआ अपनी स्वतंत्रता का नाश करता है । अतएव एक स्वयं  
 का दूसरे द्रव्य द्वारा ऊषाण अथवा उन्नेद नहीं जाना, अपने द्वारा ही  
 अपनी रपत्ति और विनाश होता है ऐसा मलिमानि निश्चय दृष्टि से  
 निर्दिष्ट करके निर्दोष, परमशान्त सगोच्छ्रित अनन्त दर्शन, ज्ञान मुख धन  
 मरूप अनन्त चतुष्टय मय अपने स्वभाव से इच्छा पुत्रक अवशिष्ट रहन  
 के 'लक्ष परद्रव्य का आश्रय है कारण चिनरा गेमे होन वाले अध्यवमान

शाऽनुग्रहाक्रियमाणोऽपि म एव क्लियते । न कश्चिदपि निरा-  
 स्या यदसौ निपदि माहाग्य विदधास्यतिसर्वपात्रमेव प्राप्नुयात् । अद्वित-  
 स्पृष्टत्वात् परिणामाना च चणचणामिनःपरिणामनशीलत्वात्  
 तता निर्विसबादभेतत्-अदेक एवात्र जायते एक एव म्रियते एक  
 एव क्लियते । एक एव च जगत्परिगता भवति नान्य कश्चित्श्ले-  
 शत्वमपि रिक्तं शब्दोक्ति । मरणा परस्परतो निमित्तत्वं द्र-  
 वत्तायाश्च मरत्येव निश्चीयमानत्वात् । ह मात्मन् यदा त्वया  
 नित्यविधिपावदश्च न समुत्त दपुत्राप तव सहचर न विद्यत तदाऽत्र  
 कलत्रमित्रादीना माहचर्यस्य का कथा । इमे खलु नि ५४ ५५

भाग की प्रकृति का निर्वाण हो जाना है ग्रहण नित्यता ऐसे आत्म-  
 प्रयत्न को करा ।

अथवा निराश्रय शरण रहित इस संसार में तब भी  
 निमित्तकी पाकर दुखी होता हुआ अनन्त काल तक चक्कर लगाता  
 रहेगा । दूसरे पक्ष द्वारा जिन कर्मों का फल का दूसरा भी भागना है  
 क्योंकि मरिवात्र निश्चय ही है एक काय जिसका ऐसा कर्मोत्पत्ति  
 'जैसा हँडल बिट्ठा हुआ फल का उस समय हँडल से ही प्रभू होता है'  
 पहिले जहाँ मरने का उस चेतन में ही प्रभावपक्ष होता है ।

लोक में भी स्पष्ट देखा ही जाता है, कि अपने स्वास्थ्य पर चिन्ता  
 में तब भी पुत्र कुटुम्बी जनान्त्रिके द्वारा अनेक प्रकार से सेवा शुश्रूषा  
 देखाने किये जाने पर भी जब प्रकृति रोगों से पादित कोई व्यक्ति  
 तब य देना में वह ज़रूर ही पादित होता है । कोई उसमें हाथ नहीं  
 डाल सकता । किसी का भी यहाँ विरहास नहीं किया जा सकता जो



॥ भस्माश्च सन्ति त्वत्परेषा देहसम्पन्धिना मातृपुत्रादीना मुहदा  
 ॥ ७ ॥ कर्मणा विभावानाश्च मयोगादेव चातुर्गत्यापत्तदोह पारे  
 ॥ ८ ॥ गहने भयविपने विस्मयन्नात्मान बभ्रमश्च मुर्धवाश्रुते ।  
 ॥ ९ ॥ खलु त्वमेव भगवानात्माऽनावुलत्वलक्षणसुरामृतमागर  
 ॥ १० ॥ परेषा सुखदायि त्वममभ्रमेण विरुन्ध्य मुनेन चैकिल्यमे  
 ॥ ११ ॥ त्वेतय स्वात्मानमेव सुखस्वमाय विरुन्ध्य न त्वमा मिध्यामाव-  
 ॥ १२ ॥ तमो निवार्य परम्परचेतोऽप्यावर्तय । परारम्भरक्षणमग्रेऽप्यधुश  
 ॥ १३ ॥ मत्त प्रयत्नशीलोऽपि भवन्नरुदानिदपि शांति प्राप्स्यसि केवल  
 ॥ १४ ॥ पुद्गलकमेप्रत्ययत्वेन जड वभाषेषु चित्तेरपर्यायरूपत्वेनावस्थि

जिप त में सहायक हो सक । क्योंकि समस्त हो जोर अपना ही दिन चाह  
 मत्त में और परिणामा म भी कुछ कुछ भर म अक प्रकार परिवर्तन  
 हुआ वरत है, अब यह बलपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आज किसी  
 भी कारणवश अनुबल हुआ क्योंकि कल भी इसी रूप म रहगा । इस लिय  
 यह निर्विवाद है कि संसार म जीव अवैला ही जनमता है, अकला ही  
 मरता है अकला ही दुःख भागता है । आयु की समाप्ति पर मुदावे में  
 उत्तर जान यात दुःखों का अवैला भोगना हुआ मरण को प्राप्त होता है ।  
 प्रिय म प्रिय आत्मीय म आत्मीय व्यक्ति भा उसर दुःख को घटाना ॥  
 समझ नहीं हो पाता । क्योंकि समस्त प्राणी एक दूसरे से विभिन्न हैं और  
 किसी भी होनेहार उस हो होने वाले म ही निश्चित है ।

हे आत्मन् जब स्वयं तेर द्वारा उपाधि कर्मादय से मिला यह  
 मनुष्य राहो भी तेरा सहचर सहायक नहीं है तब तेरे म स्पष्ट निरान्त  
 प्रो, पुन, मित्रादि का तो कहना ही क्या ? य तो किसी भी प्रकार

यमानत्वाच्चदाभामपु रागद्वेषाद्यध्ययमानपु परिणम्य परिणम्य  
 त्वेत्पमुतया परम्पादानानाहुल्यलघणपरमसुखभवादात्म-  
 नत्वात्प्रच्युय स्थितिरन्तरूपशान्तिप्रत्यनाकनाज्वज्वलननथानी-  
 पाशातिमरावाप्यमि । तत्त द्यैयाराप्तये पुरा खो ज्ञातव्या  
 वश्चारीत्य भृता विनेया यत्र मति शश्वतधैर्यं मरति ।  
 न हि स आत्मा क्राधादिभावेष्पलभ्यत तेषा दु र्गकनत्वाद् दु खदत्त  
 त्वादशुचित्वादिपरीतप्रमाणमात्रादशरणत्वाच्च । क्रोधादयः  
 शिलादु र्गमसाय साधुत्वा पराहृनयात्तादकन्याचरु खहृत्तव ।  
 आमातु प्रायकं च प्रभावत्वेनानाहुल्यत्वमात्रत्वाद् दु खफलस्तथा

उत्तरे अनुगामी या मयोगो नही होयकने । यह सब तेरे मे स्पष्ट रूप में  
 भिन्न है तू अपन मे स्मिन् इन देह म मर्वा घत, माना पिता पुत्र, मित्र  
 वल्लभादि मयाग मात्र म स्वप्न हान वाले चतुर्गति सम्प्रर्धा इस महान्  
 घोर भीम भगवद् रूप समूह को गहन समार वन में अनिशयरूप म  
 धार धार भमण करना हुआ अपन आपनो भुलकर द्यव्य ही प्राप्त करना  
 है । यह तू ही ना अनात्मना स्मरु पुत्रामृत का महार भगवान् आत्मा  
 है सो कैसे

भ्रमरश परपत्नार्थ को पुत्रदाया मानज्यर्थ ही क्लेशित होता है ।  
 उसलिये अब भी चेत निरात्मा को ही सुख स्वभाव जानकर अपन  
 मनमे मिथ्या भाव को दूर कर परपदावों स अपन चित्त को हटा ।  
 आत्मातिरिक्त स्त्री पुत्र धन्यादि क मरछण एवं समूह म निरन्तर अनक  
 प्रकार प्रयत्नशील होता हुआ भी कनी भी शक्ति को  
 केवल पृथुगल म के निर्मला स होन स नई स्वभाव वाले



न्याय प्राप्तुमशक्यं दोषात्माभावाद्भिन्नत्वाच्चाशयेन आत्मा तु  
 एवमूतवना मयपदं तुत्वादभयनन्त यावत्स्थीयमानन्तरात्मात्मस्व  
 मास्त्वान्नर्मात्वाच्च शरणमूतः । एव मन्त्रसुखेषु नात्मशुद्ध-  
 स्वरूपदिम क्रोशान्निविम न। अत्यन्तरिक्त मन्त्रेण सुनरिचत-  
 मतु । अनो मो आत्मन् रागद्वेषभेषु क्रोशदिमावेपु राग  
 मुद्ध । नदि ररिव पराऽस्त्रा कथमगिरेरयितु शक्यस्त्रमेव तस्य  
 निमित्तत्वप्राप्य मुधाऽज्ञानन विह्वनीभवति । तत्र यदा रुदा च  
 प्राग्बुद्धिविदितीत्रनिगातात्स्थमगि निमित्ततरथा परिणति, स्या  
 च्छदावि एव तत्परिणतिरागाभावास्थापिण्या ज्ञानशक्त्याऽनन्तस-

क्रान्त मान मात्रा राग द्वेष आति आत्मा म कनुपना ही पंडा  
 करते हैं तथा सत्य कनुपना स्वभाव बलि हैं इसलिये उनमें अशुचिपना,  
 मोक्षपना स्वय । मिद्ध होता है । जैसे जल म काई अथवा कचड़ मे  
 मैलापन अवश्य हाता है । पीदुगातिर रमों स उत्पन्न, एव जडता मे  
 आनमोन य काधादि आभाविक् परिणमन आपुलतामय हाते हुए भी  
 इनम ना चेतनाभाम प्रतात होता है मा य इस रूप म अपन का प्रकट  
 करते हैं य, सब इन ही रिरगत स्वभावना है । प्रगान् चिदानन्दमय  
 आत्मा ना अनादि काल मे स्वय मिद्ध है, तथा अय, चेतनव्यतिरिक्त  
 पुद्गलार्थिक परद्रव्य मे उत्पन्न नहीं है इसलिय यह अपने को सहन  
 हाता न्ना रूप म ला वर्धित करता है यह उसका निज स्वभाव है ।  
 निरचय मे काधादिकों क दुख स्वरूप प्व दुःखा क कारण होने स तथा  
 अपमुक्त हो जाने पर (जन्मका परिणाम भोगलेने के पश्चात्) उसी रूप म  
 वन रहन में अमुमय होने म, आत्मा ही निरुपाधिक स्वाभाविक

सार जेतुं शक्त एव, ज्ञातुर्भगवतो । वपुलमहिमत्वादन्यथा तत्स  
 तत्पत्यन्ताग्निनाशन माघ एव दुर्धनस्तत्र च सत्प्रयत्नाऽप्यु मत्त  
 चेष्टितवत्स्यान्न च तयोर्दुर्धन्य वा भववदनप्रत्यक्षानुमानाग-  
 म दिग्भिः सुप्रसिद्धत्वान्, अतरच्चैतरया प्रावदव्या मोघ मोक्षोपा-  
 यश्चोपादय निज्ञाय तत्सत्प्रयत्न दुर्गमिमात्मान गच्छन्निव मन्य-  
 मान, मर्धविभावशून्ये निर्दिष्ट्य नापश्यन्भाव परमे भ्यात्मनि  
 विश्रान्तिमुपैहि । अनन्यं विधानं सर्वमौचित्यमपत्कर उभया  
 महान् सवरो भविष्यति । सवर एवात्मान ज्ञानचेतनाया नात्रि  
 सस्याप्य अज्ञानिजनदुस्तीर्यममारसागरतीर नेत्याति । सवरम-

परिणति क घातक होने से अशरणा (रक्षा वरन म क-मर्थ) हैं किंतु  
 आत्मा निजपद होने क कारण अशरणात्त ज्ञान प्राप्त है कि हनुमन्  
 होने से तथा अनाग्निने अनवरत तत्र रहने वाला होने से अपने  
 ही स्वरूपक स्थानाम रहने से शरणा भूत है । इति माधुर्य सुत्र  
 समुद्रमय अपने शुद्ध स्वरूप से यह क्रोधादिक विधान अत्यन्त  
 भिन्न है यह निरिवाद सिद्ध हास्या अतएव देव्यात्मा रक्षित्या  
 क्रोधादि परपराधीन होने हुये अनाराध का होइ । का ४ परपराध से  
 किसी भी प्रकार की प्रेरणा करन, परामर्श देन म क नहीं हैं । तू  
 स्वयं ही उनके निमित्त को पाकर अज्ञानपरा विह्वल होता है ।

तुम्हारे लय कभी पहिले बाधे हुए कमा वे ती १० पात्र जैसे भी  
 नाना प्रकार की विरुद्ध परिणति हो तो नम रुक्य भी हूँ, नम परिणामन  
 में राग क अभाव को करने वाली ज्ञान शक्ति द्वारा अन्तम सार जानने  
 में समर्थ होगा ही, क्योंकि होता दृष्टी भगवान् स्वरूप आत्मा की

दृष्ट

न्तरण ससारिणामनादितोऽपि उन्निचये मरिपाक निर्जीयमा-  
 लुऽपि मरार एव । मृत्तिमाग मिल सवरम्यैर्न महिमा यत्प्रसादा-  
 दव मुमुक्षो मोनराघकान् रमारर्तान् मयाध्यातय सुग्य प्राप्नु  
 प्राप्नुगन्ति, प्राप् यन्ति । मरार मिल उन्निचये । शुद्धमगमरपा-  
 त्मनि रामाणवर्माणां कमत्याभ्यन्तलक्षणा । नरोध मय इद्धा  
 त्मोपलम्भाद्धवात शुद्धात्मोपलम्भश्च पररीयमाध्यापाहननिष्पाद्य  
 तदपोहन हि स्वपरमेदविज्ञानम तरा न कथमपि निष्पाद्यम् मेद  
 विज्ञानमपि नियतस्वभ्यलक्षणावर्जानिम तरा न शक्यम् । अतो  
 मुमुक्षो ? रागद्वेषमादृष्टद्वेषमसारप्रमोचनादिफलशक्तिसुधरा-

असाम महिमा है । अथवा पूनश्च कर्मा की म तनिका आत्यन्तर  
 विनाश हाने से माच प्राप्ति हा अमम्भ । हा ना गी । और फिर समी  
 चीन प्रयत्न भावागला का चेष्टा की तरह हा नायगा कि नु मोक्ष की  
 प्राप्ति असमय ह नही और न रुमाचीन प्रयत्न निष्फल हो सधना कथारि  
 देना वनि स्वमयद्वेष प्रत्यक्ष, अनुमान, आधम आदि प्रमाणा मे भले  
 प्रकार सिद्ध हैं ।

इस लिये "समाधिमर पक्षा म मोक्ष और नमव गाय का  
 उपादय (माहय) पानकर उसने लिये प्रवृत्ती आत्मा को मफल लक्ष  
 मानना हुआ समस्त विनाश (विकारा) से रहित अपन परम पवित्र  
 निर्विकार पराणिमय आत्मा मे विग्राम ले अर्थात् रमण कर । इसी  
 विधि मे संपूर्ण सुख र पति को करने वाला कर्मा वा मदान सवर  
 (रुक्ता) होगा सवर ही आत्मा का ज्ञान चेतना रूपी नाच मे घेदाकर,  
 अज्ञानिना डावा दुर्विषय र पार विरुद्ध न वाले ॥ स्वर स्वर के

पत्रे म छलार्याण। याथात्म्यमवमन्तन्यम् त्व मिल शाश्वति  
 भोपयोगमरूपो जीवाद्भवोऽर्थः दृश्यमानच सने जगन्निःशानुप  
 योगमयम् । कथ न्यत्यन्तविरुद्धलक्षणाभिर्मो मपरारथो परस्पर  
 प्रतुर्मुहृत. नहि चाप द्रव्य रूपमपि कदाचिदप्यनुपयोगलक्षण  
 भवितुमर्ति । अत्रोच्य वा कञ्चिन्न कथमपि कदाचिदुपयोगल  
 क्षणा भवितुमर्हात । अयमाप्ताम् दूर एव तावद यत्परिरोधिनामा  
 मामत्वेनारि शून्यानामप तावता जीवेन साह साङ्ख्यम्, यतो हि

किं तार लगा दगा अधान् उम समार स पार कर दगा । संसर के यिता  
 म राता जाव द्वारा अर्था काल से कल भाग पूरक कम समूह को रपाय  
 (नाश क्रिय) जाने पर भी संसार ही रहंगा । उमकी मना मे नाश नही  
 हागी । बगी संसर क नमीनरमौगमनतिरोवहत् तथा मचित कम  
 क्षाणनूनक समारताश हाता मुचिहल है । माक्षमग म संसर का  
 मना अनुपम नााल्य है कि जिसर प्रसाद से नाक्षभिलापी चाय मोक्ष  
 क प्रातरावी र्म शत्रुओं को घनात् राखर या दूर कर माक्ष को प्राप्त  
 है, हा रह है [विदह सूत्र म] श्रीर हाग । अत्मानुभय होने पर शुद्ध  
 परणव द्वारा आरना म आने वाला कामाणुर्गणाया म कमतर (फल  
 न का याग्यता) की उत्पत्ति नहीं हान दना मसर कहलाना है । वह संसर  
 शुद्धात्मापनजि हान पर होना है । शुद्धात्मापनजि परप्राथ विषयक  
 म ताह न कर करने म उत्पन्न हानी है । परपदाधमयी परिणति वा नाश  
 नव श्रीर पर व भेद विज्ञान मे होना है, भेद विज्ञान भी अपन श्रीर पर

सं

अवपुनममानाना पन्निर्मितोत्पाद्यवेन उत्तमानाना चिदाभा-  
 साना क्रोधादना जायदमादस्य च मज्जान्म्य परस्परतो निशि-  
 द्रमन्नुग्रवेणि च च नानुभवार्थयुक्तियुक्त वरवित्यन एव ।  
 तथा च मति मिदमेवेनत्-न कञ्चट । नद्वन्द्वमुल्लेखावन्य  
 मिदर्थे स्थापयितुं क्षम, तेन मयस्व न दम्बिपुद्गल  
 स्वस्पर्शमगध र्था वयि तन्नोतु ना ममर्थ, तत्त्वचेमायुद्धि  
 मुञ्च यदस्य पुद्गलस्य सममाद्वादयामि य निल विषयविषयि  
 सन्निपातर्त्तः । नानादेहाद्भेदसि स्वरूपे दत्तन परिष्कारानां  
 तेन तेनैवानुभूयमानात् । पदपरान्तिरिक् व प्राप्योद्भूयमाना-

के निर्मित स्वरूप म ज्ञान क विना नदी हन्ता । न-लिय ह मोक्षाभिन्नापी  
 क्षामा । रागद्वेष मोहात्मक म मृग्य म मय र सा त्याग कराने म सफल  
 शक्ति धारण करत बाल सार की प्राप्ति क ज्ञिय ममत्त्व खराबर पद रों  
 की असंलिप्त को जानना आ-इय ६ । चिद्व्य ही तू शारधनिक उपयोग  
 वाला ज्ञातादृष्टा मात्र २ = ६ और तुम स निर, दृष्टिगोचर यह ज्ञातम  
 सम्पूर्ण जगत् नित्य प्रयोग म रहित है । अतएव अल्प विपरीत  
 स्वभाव वाले य ज्ञेया [निर और पर] पदार्थ एक दूसरे म प्रवेश करत म  
 या एक मेक 'अभिन्न' होने म कैसे समथ हो सकते हैं ? और तुम कभी  
 भी किसी भी प्रकार ज्ञान दर्शनात्मक उपयोग म रहित नहीं हो सकते ।  
 इसी प्रकार कोई भी अचेतन पदार्थ कभी भी किसी भा वारणवा अचेतन  
 अचेतन स्वरूप को छू डू सके, (छू नहज नासक) तद्वत् ही वा स्वता  
 अधवा जीव के छूटत । अक ज्ञातास मात्र से भी प्रयोग शुरू हो-  
 पदार्थ का हीद व साध रवता तो दान दर वा पात है, क



नामपि पयान्निधे कल्लोलानामनुभवन किल पयोनिपाधेय भवति  
 पयोनिधिर्या कल्लोलाननुभवितु शक्यः, न कथमपि पयस्या  
 नुनायत्य भवितुमायति । एतस्मिन् स्थिते निर्जिसपादमदः—हे  
 आत्मन् त्व स्मृणुष्यायानेव व्याप्यव्यापकतया भाव्यमानकतया  
 च कर्तुमनुभवितु च शक्नोषि तस्मात्परद्रव्यमुख्यार्थकरणोपभा  
 गयोरद्वयार मिथात्मानुबन्धन विमुक्त्य तथा गत्येव सगामितप-  
 त्तर मवरो भविष्यति, ततश्च प्राग्बद्धकर्मनिजशेष भविष्यति  
 ततश्च सर्वकर्मनिजगुणान्तरमेव मोक्षी योगिजनैरुपेयोऽग्निश्व-  
 रा भविष्यति । निररण हि कर्मत्यापचाना पुद्गलाना कमरा-

यत्र गंगादी रूप से पाय जान गले, परस्तुष्ट, चेन्नवन प्रमान होने वाले  
 काया एक परिणाम और जीव का असाधारण स्वभाव उपयोग भी  
 अत्यन्त भिन्न हैं व भी एक नहीं हैं । ऐसी प्रतीति निजस्मात्तुमय से ही  
 होती है । वस्तुस्वात् ऐसी हान पर य-स्वय मिद्ध है कि कोई भी पदार्थ  
 अपने द्रव्यात्मन या गुणात्मन भाग का अंश भी अश अपने से भिन्न पर  
 पदार्थ में पदार्थ सारन या मिला सके म समर्थ नहीं है । इसलिये  
 कोई भी पुद्गल अपने स्वय, रम गंध वण को तरे में स्थापन करे क  
 लिय समर्थ नहीं है नू ऐसा न निश्चय कर । इस लिय मैं इस पुद्गल  
 का रसाग्नात्न करता हूँ स्पष्ट करना है इस प्रकार की धारणा को द्वाड़ ।  
 -य नरद तू केवल विषय [पदार्थ] और विषयी [आत्मा] के सन्निपात  
 [मिसल] में त्वत्त केवल त्रैविक्रान का ही अनुभव करना है क्योंकि  
 परम वस्तु समूह के स्वरूप आदि अनक परिवर्तनों का उभ इन्द्रिय  
 (गणचक्षु आदि) द्वारा अनुभव (ज्ञान) होता है । वायु के चलन के योग

मन्त्रलक्षणा विषय म च प्रतिममथमेव मनेषा मसारिणा  
 वागवाच्यं क्रितु तदा तन्निमनोद्भूतसुखदुःखादिपरिणतौ

निमित्त पाररन्त्यतः एव समुत्पत्ती लक्षणीना अनुभव समुद्रमे ही हाता  
 है अथवा समुद्र हा पनरा उदित कर सकता है किन्तु प्रायुको एम प्रकार का  
 अनुभव कभी नहीं होना एम वाच्य है नष्ट यत् निवृत्त है कि है 'आमन्'  
 ए वाच्य व्यापक रुद्ध ध और भाव साधक सम्बन्धमे अपने गुण  
 [सम्भारिगुण] और यथावा [कर्मसाधपरिणाम] का अनुभव  
 [वृत्त] करनेमे समर्थ हो सकता है एम लिये सिध्दांत है 'पै' हान  
 गति परन्त्याक गुणवशाप को उत्पन्न कर विपरक एव कर्मक एवमाग  
 [एव अहङ्कार] छोड़। तेरी ऐसा पारगति होने पर सम्पूर्ण सुख  
 समाप्ता। परन्तु काला रुद्ध अस्त्य होगा अथवा नष्ट पून संचित  
 कर्मनाश निर्वरण [दूर होना] होगा और कर्मक एव निरोध कर्मों  
 का नाश होना म साधु योगिगुणोंका उदय भूय अविनाशा अनन्त भोज  
 भा [निराश्रय] अवश्य होगा। कर्मरूप पारगुण वृत्त पुद्गलोंका अपने  
 स्वभावामात्र [फलानुपपत्तयामात्र] स्वयं ओ प्रियाग होना है उसे निर्वरा  
 वह 'आर मप्रकार का प्रियाग अत्ये' संसारी प्राणाय प्रतिसमय  
 हुआ करत है। किन्तु एम समय एम प्रियागने अत्यन्त दुःख दुःखात्मक  
 परिणत हो जाय 'क' कर्म सुखविपाका ए अनेक दुःख विपाकी होकर  
 लिये ] निवृत्त रहता किन्तु न हानने परप्राय का अपना मान  
 एवम अनुराग करते हुए अनेक तरह म नाना प्रकार के कर्मोंको साधते  
 हुए उनका विनाश [फलानुपपत्तयामात्र] म य रा द्वेपदेतुक आकुलतामय इस  
 संसारसमुद्रम दूध कर अनिशय कर बार बार दुखी होते हैं। हानी  
 पुष्प ता अना फल देकर और जिना फल दिय ही मड़ जानेवाले सम्पूर्ण  
 कर्मकि निर्वरा कालमें और आत्मज्ञानासक्त

स्वपरशेरविद्येन परम् म्यात्मान जननं राग कृपाणा बहुता  
 बहूनि कर्माणि यन्धन्तस्तद्विपारं, वराभद्वयपद्मावलतालं, राग-  
 समारगर्भा सन्तः, चेपिलगन्तः । ज्ञानिनस्तु सफलानामुद-  
 तानामुदीर्णानामुदयामाविष्टयमममनातानां कृमणा निररणा  
 सरे स्वरमत एवात्मज्ञानमङ्गायत्वेन रागवियोगनयानि कर्मा-  
 ण्यय, ध्वनन्तः पूर्ववद्वर्माणि यथोचितं निर्नरन्तो यथोक्तलक्षणा-  
 त्समाराच्यमाना निर्मिकल्पविज्ञानधनपरमब्रह्मसम्यक्श्रद्धा  
 नज्ञानावरणलक्षणनिश्चयरत्नत्रयसाध्यमाभ्यसुरममम्पूर्णशाय-  
 मौल्यं शाश्वतमनुभवन्ति । अज्ञानिनश्च सफलानामुदितानां दुदी-

ज्ञानया कृम्याः ज्ञानमनवीन कर्मोऽपि । यद्यनर्थं करोत हुणं पूर्णोपाति कर्मो  
 की यथाचितं निररा करोत हुणं उपरं बह गय लक्ष्यं धाले संसारसे  
 क्युन हात हुण, निविबल्यः । ज्ञानमय परम ब्रह्म निच कालमाया सम्यक्  
 ब्रह्मान, ज्ञान आचरणे लक्षणं जिसरा निश्चय रमन्त्र [सम्यग्ज्ञान,  
 सम्यग्ज्ञान सम्यक्चाग्रि ] स ब्रह्म इत्येते रमन्त्रासते ध्यान  
 अग्नि पर मोक्षमुक्तका ज्ञानमेते हैं । अथारं दारी प्राप्ति  
 अधिभक्त निरराम होनी है । अज्ञानी नीच उदयको जान न होपर फल  
 द चुकने धाले य विना फलं यि नष्ट हो जान धाले कर्मो निररके  
 समय अनादि कालम माद मर म आरिष्टं य उभक्त ज्ञान न करण ज्ञाना  
 वरणादि कर्मणि आश्रयं हेतुभूत परपदावोर्मे आसक्तिमे नये ० कर्मो  
 का बध करोत हुण, रागद्वेष मादमय संसारम प्रयत्न य ज्ञानार्थ  
 नाना प्रकार व अन्ते सुरे त्रिकल्पाम - पक्ष होन ध्यान । १७५५ - १८

२। निःकर्मणां सविशेषानिर्जराणामरेऽनादिमोहमदाविष्टया  
 शून्यवरणादिकर्मास्त्रिष्वङ्गानि मत्तपरपङ्गुतिहेतानमान कभाणि  
 यनन्ता रागाद्वेषमादलवृत्त्यनमारवृत्त्यग भवितुमशक्तः सरूप-  
 विह्वलः ॥ ६ ॥ न्यनानूनात्त्वश्रद्धानज्ञानाचरणविभाजमाव्ययिष  
 मभाविष्यष्ट चानुर्ग पशु स्वमदोहमनुभवति । अतः फलित  
 मेज्ज-मममोज तु. स्मरणा पच्यत निममञ्च कमणो मुच्यते ततो  
 ह आत्मन् माध्यायी चेत्यकनयत्नविधानेन निममञ्च यथा त्या  
 तया चेतयत् । मन्वया स्वयमदमः ॥ ७ ॥ नादिनिघनेऽग्निमैल्लोके  
 बध्नात्तुगत्तद् स्थानि यथाऽद्ययाऽमोदरास्तथा सडिस्थस ।

इस समारम चतुर्गति मन्वयी दुःख समूह को भागते हैं । सारांश यह है  
 कि गमना मोह मोहने जोर कर्मों म वधना ह और मोहराहकआत्मा कर्म  
 म दू ना है इसलिय है आत्मा यत्ति तुम्हे माध्यायी इच्छा है तो तू  
 अग्नी मन्वया चित् अचिन् माधन सामग्री म निम प्रसार संभव हो उस  
 प्रसार नि मोह या समार रहित वनन की कोशिश कर और निमोह भावका  
 चिन्तन कर । "हो ना अनादि अनन्त इस समारमें चतुर्गत्यामें अनन्त  
 बार धन्य वरते हुए आज तक निनन और जिस प्रकार के दुःख  
 भाग हैं व हैं उसी प्रकार आग भी भोगेगा ।

निजवस्त्रका सम्यग्ज्ञान न जाने से मर्गोंके अन्तमें स्थित नवमौ  
 घयों म अग्नि-द्र पद का पाकर भी जीव इस ससार का अतिक्रमण  
 [पल्लवत पण्डित] नहीं कर पाते । उन मार्गोंन अचतकमी दक्षिण स्वर्गके  
 इन्द्र मोधम इन्द्रा श्री आकपाल, लीकान्तिक दय और नव अनुदिश विमानों  
 पय पंचानुसार विमानों म अर्हाम्बद्र पद का प्राप्त नहीं किया उसके

सम्पत्तुः सानरयोऽने हि सन्धानेऽपि तमु प्रोपक तत्त  
 दमिन्द्रपत्त सप्राप्यादि ममार नातिव्रम ते । न हि तत्तपि  
 दक्षिणानाम्द्रमाभगणचालापालनीरातिमंशुत्तिगुतगाम  
 न्द्रजन्म न लन्तम् तद्विदायादुध्वलाक मयः । यत्रादि मिथ्याविश्वि-  
 शमद्वावे नममत्वेभायनीधममतायातिगभमनादुलतालनण  
 रस सुरस कसकृत्तिल्लक्ष्ये द्रुपारणतिम्याद्य ज्ञानमयभावा  
 भावेन रसयितु न शक्यत । नै किल मरभोगविरक्त मदाभ गा  
 परेणालायमानत्वेन स्वतः सद्धतया चाचला शाश्वती गति  
 सिपिधु सधियन्ति । तद्वद्वेत्तोद्गमगुधाद्यापि मधन्ति, तदप किल

अतिरिक्त उद्धृत्य लक्ष्य म भा मयत्त कपर तत्त हाकर  
 आन भा ॥ १ ॥ मिमिनज [मिथ्यात्वे] व रहन । नमय  
 भाव जन्म ममता भावनी म शगिनी अनादुलता सारूप्य सुर  
 पौ ॥ कथल ज्ञान शशाभर आमावदुता नी भावा ॥ १ ॥ अपनी  
 अमानताक वारण नी भाव या ॥ १ ॥ लाम मदार भागव निक्त  
 वतम हानद्वाराते क्षीर, परप्राप्त तत्त न । तत्त श्री ॥ १ ॥ तुद्वयम  
 हा मिद्ध हानम यति रमिद्ध गानता शान्त ह्यु द्वे आगे मिद्ध हगे  
 ॥ १ ॥ नमानम त्रिदह ज्ञेयाम हाकर म च क ला ॥ १ ॥ को यह नीराद  
 यथाय नत्ता का यथाय श्रद्धा न भूत यत्रहार सम्यग्ज्ञान यत्र यथाय ज्ञान  
 सारूप्य व्यवहार सम्यग्ज्ञान नया प्रनाधारूप्य व्यवहार सारूप्य  
 इन तीनाकी एवता रूप यत्रहार रत्नत्रय क अभ्यास म फलता नत्त  
 व्यवहार के लेश मे रहित परम विशुद्ध कथल अपता आमाव श्रद्धान,  
 ज्ञान और वसीम सम्यक् रूप निरुचय सम्यग्ज्ञान ज्ञान चार्म सम्यक्त्व  
 निरुचय रत्नत्रय धर्म बी ॥ १ ॥ द्वे यह धर्म कथन उपाय ॥ मन यचन

मत्तावत्तत्र श्रद्धा न तावत्तत्रान्नरगम्यन्तः, न ह्यस्मिन् नद्रयमपाद्यम-  
 कनारमाः ररितं मतः, श्रद्धा न तावत्तत्रान्नरगम्यन्तः, न ह्यस्मिन् नद्रयमपाद्यम-  
 त्मवभासतर्ह्यस्य घम य मा मा । धर्माऽत्र शोषामशानन्तगपि  
 मनारचः शयप्रवृत्तिं । नदिधाम्युदगव्यपगमभिः मयाजयति ।  
 घमैः, त्रिंशद्द्रव्यापरनामः तु भागः द्रव्याण्य च पदं तेषु घमा  
 धर्माणां फलपुत्राननामानि यश्चाचेतनानि जीवद्रव्यं च  
 चेतनम् । चेतनद्रव्यस्यैव हि त्वभाविभाजदुःखाभाजदुःख  
 चेतकन्यशक्तिमत्त्वेन कल्याणनिषये परमायमुखमावस्थयमान-  
 ग्राह्यतोपदेन निषयापदत्तम् । तस्य च स्वभावो ज्ञायकभावः ।

काय का प्रयात्ता क विना मा रीहलीरिः त्रिंशद्द्रव्यं अत्र अस्मिन्शी  
 सुग्राका सयोग कराना । द्रव्यपयायराशी रगुक्त स्वभावका नाम  
 घम है । द्रव्य द्रव्य है । उनमें घम, अवम, आराश का और पुष्कल  
 ये पांच अचेतन हैं उष्ण शीत द्रव्य य चेतन है । चेतन द्रव्य है स्वभाव और  
 विभावतो पक्षा फलपुत्राननामानि यश्चाचेतनानि जीवद्रव्यं च  
 है अतएव वदु ही परमा । उनमें घम स्वभाव का प्रत्यक्ष करन निषय  
 षपदश का पात्र है । उनमें उनमें द्रव्य का स्वभाव नाशमकरता जानना  
 है । जिन समय यह प्रमाण परमाणु य राद्वेष का रूपने मुद्रा अतः  
 होकर स्वभावभूत ज्ञानको करती हुआ अपना अस्मात् लीन होता है  
 उस समय निश्चित दुःखाद हेतु भूत राग द्वेषादि विकार का अभ्यास हो  
 जानेसे समस्त आकुलताओंमें रति हो अतः तत् सुग्राका मार घन  
 जाना है । इस मंतरम जिन लोगोंके विचारमात्रमें मनोरम लगन  
 बाने, मनमोहन घ-परिवार मित्रान्त्रिके रूपमें सासारिक सुग्राकी

यदायमात्मा परोक्षनिमित्तनौ रागद्वेषौ सम्प्रज्ञागुणेन व्यावर्त्य  
 एव ज्ञानमात्रं कुर्यात् । सामानं ज्ञानमात्रे तदा न क्लेशमूल  
 रागद्वेषमात्रमात्रात् सज्जलाकुलनारहितत्वेनानन्तशर्मसुधागारा  
 भवति । लोकाऽस्थिः स्वदुःखं भवति नोभयनारिगारमित्रायाप्ति-  
 लक्षणानि स क्लेशमात्रमणायानि सुखान् कल्पन्त म न्न । धर्म  
 स्यैव प्रसाद । धर्मो मत्पुत्रगिष्टशुभरागविरागस्य प्रसाद  
 इति भावः ।

तरदि प्रागकामनिर्जरणाद्यभ्युपायं ममीर्त्तानतायाः दृढताया  
 नाशमाननिवृत्तिप्रापण्याशक्तं रप्रस्पताप्राप्ता धर्मा निहितः ।

सत्ता मानी जाती है मा यह मय भी धर्म का ही प्रसाद है । धर्म का अर्थ  
 होने पर भी धर्म हुए शुभ रा । न फल का प्रसाद है यह भाव है ।

उन लोगों ने भी उक्त कर्म का परिणामिक विशुद्धि एवं दृढता  
 के अभाव से माय प्रान कराने में अमर्थ अशामनिर्जरा पालसंयमानि  
 रूप उपाया द्वारा पहिले भय । ज्याहारिक मध्यम दर्जे का धर्म पालन  
 ही किया है जिसका परिणाम यत्नमान सुख है । लोभम लग्नपनिना पुत्र  
 होते ही लक्ष्यपति कहलाना है, उसने लक्ष्यवीरा बननेकेलिय कोई प्रयत्न  
 नहीं किया किन्तु उस सम्पत्ति का अधिकारी वह अवश्य है । इस से यह  
 सिद्ध है कि कल्पना से बनाई मयत्न जिसका ऐम सासारिक सुख की  
 प्राप्ति भी अथ पूर्वार्पणार्थ पुण्यसमक धर्म को ही है । धर्म आत्माका  
 है, आत्मा का स्वभाव जानना दखना है, इसलिये मोहादि दाया

२५ शुद्ध ज्ञायक स्वभाव धर्म है और उस धर्म का निष्पत्ति मूलक

]

जिन जिन उपाया द्वारा अशस्थान अशक्त मोक्ष

इंगते मिल अश्विन्लक्षपतिगृह उत्पन्न एव लक्षपतिपुत्र  
 कथ्यते, न हि तेन अश्विन्दर्पेण प्रमो विनोषार्चनाय विहित,  
 विताधिहारी च ममस्त्येव । तत मिद्ध रन्पनाकलितकलगामा  
 रिन्मुखायाप्तापि धर्मस्य श्रेय धर्मञ्चात्मन्धमाय एव, आत्म-  
 रभायश्च ज्ञायन्भावन्ततो माहाद्विदापशूय शुद्धा ज्ञायन्भावो  
 धर्मतस्य च रैर्यैर्निरतिर मे कृत्यैरवस्थापन मयात तानि मकुश-  
 लकायाणि धर्मशब्देनोपचायते ज्ञायन्प्रयोजनत्वात् । पु सो  
 विशुद्धिरपि धर्म शुद्धनायकत्वप्रयोजनत्वात् उत्तमचमामार्दव-  
 र्जगशौचसत्यमयमतपस्यागात्रिचय प्रहर्षदशलक्षणात्मनोऽपि

बद्ध स्थिति होनी है वे सब स्तुत्य भी धर्म नामसे व्यवहारमें लाये  
 जाते हैं, क्योंकि वे जयन प्रभावकी प्राप्तिमें प्रयोजनीय हैं । नीरकी  
 विशुद्धि भी धर्म है लक्ष्मी रूपकी प्राप्तिमें राखे होनेसे । चम  
 चमा, मार्दन, आर्चन, शीघ्र स्तुत्य, मयमतप, त्याग, आर्चनचन्द्र, प्रह  
 र्चय दशलक्षणात्मक प्रयत्न भी धर्म है निष्कारक रूपकी प्रयोजनता  
 होने से । क्योंकि रागद्वेष का त्याग ही विशुद्धि है, उस विशुद्धि के हाने  
 पर प्रभाव आला हाने से मयन्ता रहने वाले ज्ञान स्वभाव की अय प्रेमा  
 धिक परिणामा का मसर्ग न होने से शुद्धता ही प्रसारित होती है, और  
 वह शुद्ध ज्ञानात्मक भाव आत्मा का निरन्तररूप है अतएव यह स्तुत मिद्ध  
 हुआ कि आत्मस्वभाव ही धर्म है ।

इस प्रकार धीर और अनीव अलवा चेतन अचेतन जिस रूप में  
 स्थित हैं उनकी सभी रूपमें प्रतीति [शुद्धान] होना सम्पदशन है, उसी रूप  
 में उनकी प्रतीति होना सम्पत्तान और प्रमे अद्धान एव ज्ञान के अनुरूप



धर्म शुद्धज्ञायक प्रत्येक ज्ञातृ । यः विशुद्धिं किञ्चिन् राग-  
द्वेषनिवृत्तिमिदं स्यात् च मत्वा स्वभावरूपेण शाश्वतं स्वीयमानस्य  
ज्ञानस्वभावरम्याप्राप्त्यवसर्गतया शुद्धतैरागर्मायत, न च शुद्धो  
ज्ञानमाप्नोति भाव आत्मनः स्वभावरूपतः तद्वत् एवात्मनः स्वभावरूप-  
धर्मः । तथा चात्मानामाप्नोति यथावस्थितौ तथा प्रतीतिः सम्य-  
ग्वर्तनं तथापि न सम्यग्ज्ञानम् तद्वत् न स्यात् शुद्धाय ज्ञाया  
स्वभावे चरन् रागिणः । आत्मनः स्वभावश्च ज्ञायकभावरूपतः  
मिदं एवात्मनः स्वभावरूपधर्मः तथा चोत्तमरूपा क्रोधाव्यावृत्तिमिदं स्यात्  
तस्याः स्वभावतः शाश्वतं स्वीयमानस्य ज्ञानस्वभावरूपोपा-

हो आत्मनः स्वभावः न स्थितिः तात्पर्यं चात्रि है । और यह आत्मनः स्वभाव  
ज्ञायक भाव ही ता है इसलिये मिदं ज्ञाया कि आत्मनः स्वभाव धर्म है ।  
अपरच—उत्तमरूपा ज्ञायक व आभास [निरास] का फल है क्रोध की  
निरासि ज्ञाननर स्वभाव ज्ञानन निरार रोन वाल ज्ञान स्वभावको  
उपाधका ससंग न ज्ञान न शुद्धता का निरार है और वह शुद्ध ज्ञान  
भाव आत्मा का स्वभाव ही ता है नम मिदं है कि आत्मा का स्वभाव  
धर्म है । उसी प्रकार मान भावा लीम ज्ञानतः असंयम और नृणां क  
। रूप उत्तम मान आन , शीघ्र, मत्त, सयन तपोमय गुणा क होन  
उपाधि नाश ज्ञान मे उस ज्ञान भाव का शुद्धता का प्रगट होती है और  
वह शुद्ध ज्ञान आत्मा का स्वभाव है इसलिये यह सिद्ध हुआ कि आत्म-  
नः स्वभाव ही धर्म है । परिप्रदसे दूर रहनेकी भावना रखना त्याग है । उस  
होनेपर परोपाधिया का शाश्वत ज्ञान न उस ज्ञान स्वभाव की  
ही साक्षि होनी है और वह शुद्ध ज्ञान मात्र आत्मा का स्वभाव

अतः अतया शुद्धतैवावसीयते न च शुद्धा ज्ञानमात्रा भाव आत्म  
न स्वभावस्तत मिद एवात्मस्वभावो धर्म । तथैव च मानमा-  
यालामाप्त्यासयमेव निरोधलक्षणेषु तममादवाऽवशौचसयमत-  
दातुं पु मत्प्राधिग्यावृत्तेस्तस्य ज्ञानभावस्य शुद्धतैवावसीयते  
स च शुद्धा ज्ञानमात्रा भाव आत्मन स्वभावस्तत मिद एवा-  
त्मस्वभावो धर्म । तथा च पश्चिद्वाऽप्यावृत्तिपरिणामस्त्यागभू-  
त्स्मिन्परिणामऽप्युपाधिग्यावृत्तस्तथ ज्ञानभावस्य शुद्धतैवावसी-  
यत न च ज्ञानमात्रा भाव आत्मन स्वभावस्तत मिद एवात्म  
स्वभावो धर्म । तथाऽपि चेदपि ममान्यत्रिष्वपि नास्तीति

है इस कारण यह सिद्ध हुआ कि आत्मस्वभावका नाम धर्म है । तथा  
इस ससारम मेरा कुछ भी नहीं है, इस प्रकारक ममताभावरूप  
आर्क्षिक धर्मक हानपर परपदार्थके सम्पर्कका अभाव होनेम ज्ञान  
की शुद्धता ही होती है इससे भी यही सिद्ध हुआ कि आत्मस्वभाव ही  
धर्म है । तथा ज्ञान-दमय शुद्ध निज स्वभावम समग्ररूप प्रत्यक्षके  
होनपर मरनम्हारी अतः समस्त दोषों के निरन्तर दूर होजाँनेसे आत्मा  
निजस्वरूप- । जो सिद्ध करना है प्राप्त होना है, इससे भी यही परिणाम  
निक्ला कि आत्मस्वभावका नाम ही धर्म है । हे आत्मन आत्मस्वभाव  
निश्चय ही किसी दूसरेकी सहायतासे प्राप्त नहीं किया जाता है क्योंकि  
जो जिसका स्व [अपना] है उसका स्वामी वही होता है ऐसा मन्त्र  
प्रकार सिद्ध है । निश्चय धर्म का साधन मात्र व्यवहार धर्म, यदि आत्म  
स्वभावक श्रद्धा व ज्ञान आचरणम आत्माकी ही अज्ञान परिणामिक

परिणा परव्यावृत्तज्ञानस्य शुद्धतैवति मिद आत्मस्वभावा  
 धर्मः । तथा प्रकृत्यवस्थ यदा मिलात्मा इन्द्राणि आत्मनि  
 शुद्धे ज्ञायकभावे चरति तदाऽयदोषात्यन्त-गर्भितत्वात् स्वात्म-  
 स्वभावेन साधितवानिति तथापि मिद आत्मस्वभावा धर्मः ।  
 इ आत्मन् ? आत्मस्वभावा हि नान्यस्मादर्थान्निभ्यत यो हि  
 यस्य स्वः स एव तस्य भ्यामीति सुप्रसिद्धत्वात् । नश्ययर्ममाध  
 ननिमित्तमात्रा हि व्यग्रद्वारधर्मा यद्यात्मस्वभावाश्चक्षुः न ज्ञानाचरणे  
 प्यात्मन एवाज्ञानराश्यातिमद्भावेन । नमिच न भवति हि स धम  
 मज्ञाऽपुनचरितत्वेनापि न लभते नत फल पश्यद्वारधम एव मा

कारण निमित्त नहीं हो ना वह उपारम ना रम सज्ञाता नहीं प्राप्त  
 कर सकता ।

इस लिय केवल व्यग्रद्वार धर्म ही मन मल । अपन ज्ञानके  
 काधरोधक रागद्वेषके त्याग करता हुआ हा सन्नाप मान । अथ नमस्व  
 परंपदार्थोम अनुराग शुद्धिका छोड़ आत्ममात्रका प्रभव परे । तभी  
 मुक्ति का समीपवर्ती तू बन सकगा । पुण्यविषयक राग छाहना चाहिये  
 क्योंकि सासारिक नानाप्रकारक सुख वैभवकी प्राप्ति रूप पुण्यफल  
 को किमीने चाहा तो उसने संसार ही मंगा है २० । ११२ मिद ह । फिर  
 पुण्यानुरागका अर्थ जाना है वैभवकी अभिलाषा और अभिलाषाका  
 दूसरा नाम है साधकभाव, तथा साधकभावका सन्नाम पुण्यबंध  
 होता नहीं ।

इस प्रकार पुण्यराग वा अभीष्ट पुण दाता न हो स अत्यंत हेय  
 समझना चाहिये, तथा संसार का कारण जान र पाप २० सन्नाम इसे

दृष्टान्न ज्ञानविशेषमूलौ रागद्वयो व्यावर्तयन्नेव सतोप मन्यस्य ।  
 यदि सर्वेष्वर्थेषु रागबुद्धिं निहाय स्वात्मानमेवानुमतिप्यसि  
 तदैवामरुद्भुत्तिर्यो भविष्यति । रागः क्लिप्तपुण्येऽपि वर्जनीयो  
 वर्तते यत्र हि पुण्यफलं मानारिह्वैमवायापतिः । यदि केनचित्पु-  
 ण्यं याचितं सत्तार एव याचितं मिदं । किञ्च पुण्यरागः क्लिप्त  
 वैमव इच्छा, सब चोन्नरूपाय, तीव्ररूपाये च पुण्यबधोऽपि न  
 भवति । इति पुण्यरागं यं स्वार्थकियाकारित्वाभ्यासादत्यन्तहेयत्वं  
 सत्तारप्रयोनकृत्वाच्च पापबधस्येव पुण्यपदस्याप्यनिष्टत्वं च ।  
 ततः परमात्मनो धीतरागतागुण्येऽनुरागं विधेहि । म एव शरणम् ।

मी अनिष्टकारी, कुछ करने वाला मानना चाहिए । इस नियम परमात्मा  
 धीतरागतागुण्य गुणमनुराग कर । वही शरण है । धीतरागतागुण्य  
 अनुराग करनेवालेके मरागतागताग नही आता क्योंकि वह धीतरागताग  
 रागतागलिये है [ मनारकेलिये नही ] धीतरागतागका बहान वाला  
 है । रथ हा धीतरागताग का प्राप्ति हुए महात्माका ही मनुष्यमयकी  
 सफलता इसी धीतरागतागके प्राप्ति करनेपर है अन्यथा, रूप रस, गंध  
 स्पर्श शब्द पर्यायात्मक पुद्गलों का उपभोग वा पशुआक भी बार बार  
 निरन्तर हुआ करता है । इस लिये है आत्मन् 'धर्ममय निज स्वभाव  
 में अथवा निज स्वभावरूप धर्ममय रमण करनेकेलिये क्रमर कस ले ।  
 इस सत्तारम तूल स्वयंघन धान्य आदि सम्पदा बुद्धि बल से प्राप्ति सम्मान  
 पद प्रणिप्ता, तथा इतर भौतिक सुखसामग्री बार बार प्राप्ति की है किन्तु  
 सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र्य रूप व धि भेद विज्ञानमयी भावना से उत्पन्न जो  
 धीतरागताग वसस पैना हुआ राग द्वेष की नदता वञ्जन्य समाधि, संसार

न हि विरागानुरागस्य रागत्वमाद्यत तस्य विरागत्वप्रयोनर  
त्वात् विरागत्वसंबद्धकृतात् स्वरसतः एव विगंगाशून्यं न परिण  
तस्य महात्मन एव विरागानुरागस्योत्पद्यमानत्वात् । मनुष्यस्य  
स्रैतस्मिन् क्रियमाण एव सकलता । स्वशरीरस्य धर्मपगन्दमोग  
स्तु पशुनामपि वरीकृत्यते । अतः सो आत्मन् धर्मस्य ब्रह्मस्वमावे  
ब्रह्मस्वमावमये धर्मे रन्तु बद्धकक्षो भव । जगति किल सुखं धन-  
धान्यादिसपदः शेषुर्पाकलालन्धप्रतिष्ठा पार्थिकमपदश्च मुदुर्मुद्दु-  
प्राप्य, गिन्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररत्नत्रयात्मकशोधिर्भेदबुद्धिद्विज्ञान  
भावनासमूहस्य वैराग्यप्रकर्षममुद्भूतरागद्वेषमान्धमूला ममाधिर्भर-

मूलक शुभाशुभ परिणामोंके निरोधक ब्रह्म बुद्धिपरिणामशुद्धि, और  
दृष्टात्कीर्ण शुद्ध ज्ञायक स्वभाव मयी परिणाम स्वरूप आत्मोपलब्धि कभी  
भी नहीं प्राप्त की, इस लिये मोक्ष सुख रूप तुल्यमम्पत्ति के सिद्ध करने  
वाली याधि का ही दुलभता है विषयवासनापूरन सुखभाधना का नती।  
इसलिये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यम निरन्तर प्रयत्न करना हुआ मिथ्य दूरान  
ज्ञानचारित्र्यहेतु रागद्वेषमोहलक्षण संसारके ज्ञानके लिये, कमर  
कम के तैयार होना । आत्मरक्षण रूपधर्मके प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न  
शील होना हुआ शरीरका, हानिकारक प्रयोगोंसे आत्माकी हानि क्या  
मानता है । आत्माका अतित निश्चयमे विशुद्धि का दास होनापर  
होता है । पर यह निश्चित है कि शरीर और आत्मा बिल्कुल विपरीत  
गुणधर्म वाले हैं इस लिये जो क्रिया जीवक लिये हितकारी है वह शरीर  
को नुकसान पहुँचाना वाली है और जो शरीरका हितकारी है वह  
आत्म के तिलुलाहोर्त है । 'यदा हि सृष्टं पृष्टं स दह ग्याति दूषितं भी

इतरशुभाशु १२गिखोमनिरोधना परिणामशुद्धिष्टमोत्तरीयं दुष्ट  
 ज्ञायस्वभावमयपरिणाम तन्मात्रमोपलब्धिः कदाचिदपि न लब्धे-  
 ति शिरमौल्यतुलमपत्माधिभावा बोधरय दुर्लभत्व न तैषयि  
 कमुच्यमाधनानामत मद्दृष्टिगोचररखोषु भूतत यतमानो  
 मिथ्यादृगवगमचरण ल रागद्वेषमादलक्षण जगज्जेतु पद्वयद्या  
 भया । तथा प्रयतमानो दृढापकारकमप्रयागे कथं स्वात्मनानि  
 मन्यमे । आत्मनो हानि किल विशुद्धिहानावास्ते । अपरैश्चैत-  
 क्षिश्चित जानीहि यज्जायस्यापकारक समक्षित दुदेहस्यापकार-  
 मम्, यच्च वपुष उपकारक तज्जीयस्यापकारकम् । यद्यपि सूक्ष्म-

तो भी कपाय स प्रसन्न विषयके त्यागनेम भयभीत प्राणी ने । हय ह-  
 व्याप्ति हितका संपादन करने वाला है ही अन कामकराणः  
 चाहने वाले जिज्ञासु मुमुक्षु जना का वक्ष्य गाष्टः  
 भोजनका करना आदि विषयोंमें चितका हठार गुप्ति  
 समिति धर्म, अनुपेक्षा, पराग्रहणोंमें तथा विश्वस्वरूपका अवलोकन  
 करने पर सिद्ध त्मस्वरूपका चितन वरन्म अपनी शुद्धिवाहने  
 ये क्षुधा रुपा आदि तरे समाव नहीं हैं आपितु मोहनीय कमसी महाधना  
 से वन पाय हुए अमातावेदन यत्र अन्यस पैदा हुई व्याधिया ही हैं  
 भोजन पान आदिको कुछ भर के लिये उपशमन कर देनेक टपाय 'मोत्र'  
 हैं । आत्मवचनके प्रगट न होनपर ही ये भूरा प्याम आदि की इच्छा ये  
 व्याकुलता पैदा कर सकती हैं । दसो, एक दो तीन चार मास तक उपवास  
 धारण करने वाले नरमव और तनत्रय प्राप्तिरा रातायण स नने वाले में  
 कपायमान हो, उपेक्षा पूर आहारचर्या करने वाले,

दृष्ट्या व्याप्तिरिय दूपाऽपि व्यसथापि कृपायकालीकृपाय  
 त्रिपयानुजिक्तु निम्पते प्राणिने व्याप्तिर्हितमपादिर्नैपानि धृष्य  
 रमन्ताप्रभृत्त्रिपयेभ्यश्चेत्त व्यापत्ता गुप्तिमितिधम नुप्रेक्षा  
 परापहजयेषु ग्यात्मपरूपावलोकन मद्वात्मपरूपाविन्तने च  
 जेमुपी मशक्ता विधेहि । न ह्येत स्रुगादयस्तत्र स्वरूपमिद्धा  
 एत स्निग्ध मोदयमाहात्म्यगतौदयद्वये नामद्वयोदयन जाय  
 माना व्याधय एव नाननादयश्च क्षणावगमतायधानम्यथाया,  
 एत मरुत्परमणीया । आत्मरत्नाभिध्यञ्जनाभाय एवेते व्या-  
 कुलत्रमुत्पादयितु शक्नुवन्ति । सागूना किल निवृत्तैक द्वित्रि

के उदय से कुछफर जिन, मान वयन आहार प्राप्त नहीं कर सकनेसे मान  
 रक्षात्मिके अभावसे हृदय तथा मिंगम्रो (नसा) के समूह रूप शरीर  
 धारण करने वाले साधुआके आत्ममात्रनाम अविनाशितगो (मद्वा)  
 होने से त्रिपात् या क्लेश तो दूर रहा जल्दा काई अवश्यनीय अमाधारण  
 आनन्द का उदय होता है । तत्रा यह उत्तरा तर बढ़ता रहता है । कर्मोदय  
 के निरुत्तिमे पैदा हुए भूय व्यासात्मिक अनुभव आत्मपरभावके समस्त  
 प्रतीत होनेवाले विकार हैं और अपने निमित्तभूतकर्मकी निर्जरा या चानस  
 एक बार भी नाश हो जानपर हमेशासलिय दूर हो जाते हैं । परमात्मा की  
 यही तो परमात्मता (प्रकृति) है कि शुद्ध आत्माम अत्यन्त निर्दोषता के  
 आचानपर रागद्वेष मोहान्ति पापोंका मयथा अभाव हो जानसे क्लेशको पैदा  
 करने वाले औदयिक भूय व्यासादि पाधाय फिर कभी भी पैदा नहीं हो  
 पायी । अभी लिय कम रूप आवरणके कभी बरण नाश हो जान से उसकी  
 भव भविषान् शर्ममान सन्ध की अनपथाया सहित अरिपल विरय की





मन्त्रावत्त्वेन रागद्वयस्य मनोमगतां लब्धेः कदाचिदप्युत्पन्नं  
 नाहन्ति । तत एव चारणनयाद्विरमं निश्चयार्थं युक्तं ज्ञानं  
 निजानन्दरसमग्नं मन्त्रमाधुसूदोहं सस्मर्यत, स्मरत उग्रम  
 मानास्त तादृशा भवन्ति । इत जयतु जयतु सततं कल्याणमय  
 परमेश्वरा तुम्हारेण यत्नशदानिराधिगमनिर्गममृत्तिमादत्तव  
 रोधमाहकपाटी भक्तिबुद्धिः योद्धाव्य मन्त्रजनाः स्वस्वरूपाया  
 प्तिमयमाद्ये । नवमन्तोऽनररत शाश्वत माहात्म्यमनुपम सुखमनु  
 भवन्ति । तत्तिष्ठन् न च मद्यान्, न च नान्तरा स्तनत्रयम् तच्च, न  
 विना ध्यानं तच्च न विना मनस्थैव भवितुमर्हात मन । स्यैवञ्चेष्ट-

चोतन म इसका पुण्याय मफल न हो जाय । इसलिय हे आत्मन् परापूर्व  
 के ज्ञानपर क्या हरना है । भवयुद्धम प्रयत्न कर इन शत्रुओंकी जीतकर  
 परनिमित्त मे पदा होनवाली कल्पनाम रहित नित्य, शाश्वत ज्ञान  
 साम्राज्यके सुखकी भोग । इत कर्म शत्रुआके मूलोच्छेदन करनेम तभी  
 आत्माम किसी प्रकारकी दुबलता भी क्या नहीं है । तर भी इतनी  
 सतन्त्र शक्ति है कि चिनक इस शक्तिकी व्यक्ति है गई है और जो उस  
 की पूर्णतया अनुभव करत हुए भी कल परभीतम उसकी गणना करने म  
 या वर्णन करने म क्षम नहीं है क्योंकि यदि उसका पूर्णतया वर्णन या  
 गणना करली जाय है तो उसकी अनन्तताका व्यापात होना है । अस्त  
 आराम म प्राप्त किता हुआ ज्ञान दुख व परीपहके वपस्थित होने पर  
 नष्ट हो सकना है इस लिय मूढ आत्माओंके द्वारा माने गय दुःख म  
 अभ्यासी ज्ञानी आने की संयुक्त करे अध्यान् कायकलरानामक तप यदि  
 बुद्धि वाले बहिरात्मा जायो क द्वारा कल्पित मुर, दुःख, कल्पना मात्र

नित्यरतिपरिणामनिरहाद्भवति त च विधातु तादृक्षम\*  
 पुरुषो यावत्स्यैयधैर्यविध्यमनप्रवणविविधपरीपहाणां विजयेऽस्-  
 याविफल. पुरपकारो न भ्यात् । अतो मो आत्मन् कथ विमेषी  
 परीपहोपनिपाते भावगङ्गे प्रोद्यम्य इमान् शत्रून् विजित्य शाश्व-  
 तिक परापाघजकम्पपताविविक्त स्वगधीन ज्ञानसाम्राज्यमनुभव ।  
 एषां मूलतो मन्यने न तव कापि न्यूनता । रयीयती शक्तिर्यद्वै-  
 शधेन गणनया रणयितु व्यक्ततच्छक्तिकोऽपि ता पूर्यतयाऽनुभव  
 अपि न क्षम , वर्णने तस्या अनन्तत्वस्यावातप्रसङ्गात् । अदु ख-  
 समुद्भोति ज्ञान दु खे समुपस्थिते विनश्यति तस्मादात्मान  
 मूढात्मभिर्मतैर्दुःखैर्भविष्यत् सयोजयेत् । बहर्धीभिर्मत सुख दुःख

ही है। क्योंकि यदि ऐसा पूछा जायता सुना आकुलता का नाम दुःख है।  
 वह आकुलता वाक्य पदार्थों में आत्मा या आत्मीयबुद्धि रखने वाले लोगों  
 को परपदार्थों पर अज्ञान रखण और नाश हानि में मन स्तब्ध म अभाव से  
 मा परपदार्थों की स्वेच्छानुकूल परणतिन होने होती है। ज्ञानी पुरुष  
 के इसमें क्या आया गया क्योंकि वह तो निज से भिन्न परपदार्थों में आत्म  
 या समत्व बुद्धि रखता नहीं। इसी प्रकार बाह्य वस्तुओंमें स्वात्मतम अथवा  
 स्वात्मीय बुद्धि रखने वाले लोगोंके कदाचित् अपने पुरयोदय की प्राप्ति  
 होने पर परपदार्थों की अपने शरीर के सनाप इरणादि रूप जो स्वेच्छा  
 नुकूल परणति होती है उसे सुख माना गया है। किंतु यहा भी ज्ञानी  
 पुरुष को क्या मिला या गया। यहा भी निज से भिन्न परपदार्थों में उसकी  
 आत्म या आत्मीय कल्पन नहीं होती। ज्ञानी जीवों के रत्यरति आदि  
 मारा के सम्पर्क से रहित स्वात्म संवेदन में सन्तोष होता है और रागद्वेष

कलनारनितरुलमेव । इत इतिरेदुच्यते-६ णि किंवाचुन्य  
तद्वि रतिर्द्रव्येषु स्वात्मानात्मयत्वं वा म यशाना तप मारम्भे  
रक्त शे प्रियागे परमायत्वन मनस्तुष्ट्यभावात् स्व-द्रातुक्तन परि  
णत्यमायात् इगु भिन्नं नाग्नि यारनित म्यान् सारिक्तभात  
द्रव्येषु स्वात्मबुद्धेरात्मयत्वं बुद्धेर गाना गात् । सुख रापि बर्हि-  
रर्थेषु स्वागानात्म यत्वं मन्यमानाना ज तूना रडाचित् रतिर-  
र्याणा स्वपुण्ये, दयानुप्राप्ती परमायत्वेऽपि स्वर्क गन्याध्यामत्वन  
कायनिमित्त म ॥ पहररनात् म्याति रमत्र ज्ञानिन्यापतित म्यात्स्ववि  
नियतमादृश्येषु स्वात्मबुद्धेरात्मयत्वं चेन्नामायात् । ज्ञानिर्ना  
विल रस्यरतिभावास्पृष्टार्थविवेधन तेष समुत्पद्यते स्याति-

या प्रीति कर्मात् स्व म दिपद्यते पश्यात् ॥ ७ ॥ यत्न म लोप या शेष देश  
होती है । पाह्य रूप म पुष्ट भी करत हुए ज्ञाना पुण्या की अनरग म गही  
भावना रहता है कि प्रगट रूप म पुष्ट भा करत हुए मरी अ नरग आत्मा  
म पयात्मक गा विपरीत अद्वान ज्ञान दया हो जाय । चारित्र माहनीय  
के निमित्त उद्य होने वाले रागद्वेषात्मक परमाणु म = १ महाम सहाय  
होता है और विरक्ति भावना भी उत्तरोत्तर पुष्ट होती जाती है । यह कारण  
है कि ज्ञानिया के विषय भेदन हो पर भी मिथ्यात्व ७ क नपु मक,  
असंप्राप्तास्पायिवा, पञ्चन्द्रय, स्थावर, अजातप, सत्त्व, ७ गारण अपय  
जि द्वारिन्द्रय त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तरकापु, नरकगति गत्या ती, अनन्ता  
नुबधी माप मान, माया, लोभ निद्रानिद्रा, मयलाप्रचन स्त्यानगृद्धि,  
दुर्भंग, दु स्वर, अनादय, यन्नाराच नाराच, अघनाराच जलकसंहनन,  
न्यमोष परिमंडल, स्वाति, धामन, दु-क संधान, दुग्म- पीचगोत्र

मात्रममराधाशेषवने च ऐष. ममुत्पद्यते । किञ्च किञ्चिदपि  
 कुवतान्तपामप एतैः व्ययमायो यत्किञ्चदपि कुर्वतो मे विर  
 रीताभिनिवरास्तन च महिता प्रवृत्तिमा भवत् । चारित्रमाहरे-  
 चवशनायमाये, स्तुतिपारणाम्पु मदास्तापा भवति  
 । गायुद्धरपुत्कृष्टा चायत । एतद्व कारण यद्विषयाभागापि-  
 ज्ञानिना । मध्यस्वदुष्टपडामप्राप्तकः । वस्यावरातापद्वयताप-  
 रणापर्याप्तद्वित्रिचतुरिा द्रयनरकापुगत्यानुपूर्व्यान्तानुबन्धिकोप  
 मानमायालामनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिदुर्भगदु.स्तराना  
 देवमन्ननाराधनारावादनाराचर्कलकमहननन्यग्राधपरिमडल-  
 स्वातिनामनदृष्टकमस्यानदुगमनस्त्रीनीचैर्गात्रितिर्यग्गतिगत्यानुपूर्-

वियोगानि, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु इन ४<sup>०</sup> प्रवृत्तिया का धंधन  
 नही होता । उस में यह निश्चिद्व हृत्मा कि रागरतिमा स रक्षित ज्ञान धंधका  
 हनु नही होता । प्रत्युत भा चर्क प्रधान कारण सवर और निचरा का निमित्त  
 बनता है । इस लिये उपयुक्त ज्ञान प्राप्त करके शलिय समान पुण्यको  
 निमित्तवप-नव २० म गहन जन्य ज्ञानादि गुण स्वरूप परममह्यम हवन कर  
 सम्पूर्ण पाह्य ५००० म प्रवृत्ति का अभाव ज्ञान में अपन अन्यथ पुनर्धार्य  
 को कर । उस प्रकार व प्रयास काल में उपस्थित हुए परीपहों को छीतन म  
 न्तसाही होता हृत्मा अपनेको इस लिये धन्यमान कि मुक्ति कन्या स  
 विद्याह करने का भिला है मुअवमर जिसमें वम इस मनुष्यमव में मुक्ति  
 के लिये उद्यम करते हुए येरी परीचा का समय आगया है । नि सन्देह में  
 आज इस कठिन परीचाको पास कर अनादि काल में कथे हुए धर्म शत्रुओं  
 को नाराकर निराकुल समय अविनाशा ग्य का अनुभव करू १, उस

व्याधिपापामेकवत्त्वमिति प्रकृतीनां बन्धा न मरति ततः भिद-  
 रागकल्मषतावर्जितं ज्ञानं न मन्वदंतुं प्रत्युत परस्मिन्पराभवेयौ  
 माद्योपाया विदधानि । अतस्तादृजज्ञानमप्यदन मयमपि पुण्य  
 निर्विकल्परसात्मात्यज्ञानादिगुणपरमवृत्तिरहितं सफलमस्ति  
 र्थप्रवृत्तिव्यावृत्त्या अपुरुषस्वरूपमाध्यास्येति । तथा प्रयत्न-  
 समुपपत्तिनां परीपक्षाणां विषय मोक्षादो धन्य मन्यमानश्च  
 प्रभवतात् यन्मुक्तिकन्याकरग्रहणावमरऽभिन्नेरमयं भुवत्यै प्रय-  
 तमानस्य मम पराक्षाकाल आयातः । नूनमद्येमा परीक्षाभुक्तीर्या-  
 नादिसबद्धकुमारीन् इत्याऽव्ययं सुखमनादुत्तमयमनुभविष्यामि ।  
 अथनैतया रीत्या परीपदविजये प्रयतमानः परमाभिर्विकल्प एव

प्राप्त करूँगा । अथवा इस तरह परीपदों की चीन्ने में प्रयत्न करना हुआ  
 मैं ममान विरक्त जाल में गड़ित उस शास्त्री को प्राप्त करूँगा । जहां ध्यय  
 [ ध्यान करने योग्य ] और ध्याता [ ध्यान करने वाले ] का भेद नहीं रह-  
 जाता अर्थात् यह आत्माही ध्यय एवं ध्याता हुआ जायगा । ऐसा होने पर  
 अभाष्ट जो मोक्ष है वह निर्वाध रूप से क्षण भरम ही सिद्ध होजायगा ।  
 इस तरह यह भला भाती सिद्ध होजाय कि चारित्र के बिना मुक्ति नहीं  
 हो सकता । एवं वीर, धैर्यवान् पुरुषों द्वारा धारण किया जाने योग्य  
 चारित्र के प्रारम्भम भगवान् की भक्ति महान् उत्साह प्रदान करती है ।  
 तथा "म उत्साह को क्षीण करने वाले मोहनीय कम वं परद को पाड़ने  
 में आचिन्त्य माहात्म्य रखने वाले और मोक्ष का साक्षात् साधन निष्ठा-  
 स्वरूप में रमण करता है । जो अपने आपमें मग्न होने की मागर्थ्य  
 रखता है वही मोक्ष मुख्य वं प्राप्त करता है । आत्माज्ञानके अभाव में

भूयान्ताऽऽत्मेव ध्येया । तऽऽप्यात्मेव स्यात् । तथा सफल-  
 मभाष्टमविन्नतः चण पर । मद्धयनि । नून मिद्धमेतत् नर्ते चरि-  
 शि मद्ध भगवद्भक्तिर्हि व रोचितचारित्राभ्ये समुत्साहिका  
 तदुत्साहारगोधरमोहपटलभेदनामधारणप्रभाया साक्षात्सुभित  
 माघनश्च स्वरूपमभावेजनम् । य. स्वरूप समावेशाधिकारी स एव  
 शिवमौल्य कभते केवल परमेष्ठिनो गुणान्  
 गायन्तोऽधेकनाघर स्वरूप स्व लभेन् यथा  
 नि कर्मादिचनयस्य विवाहाप्रमरे र्त्तनादता वा य  
 निग्न गान कर्वाणत तां केवल उत्तना धकारिणयो न नि र्थ-  
 चिदपि यदुत्सामित्वसुखं लब्धुमर्हति, माता च तथाऽऽदभ्यर

कवलपरमेष्ठी का गुण गान करने वाले अधिकसे अधिक श्रम पुत्रको  
 शाप कर लेंगे । जिस प्रकार किमाक पुत्रके शिव हाथपर पर तुलाई  
 गर्भस्थिया [ठाननी या मात्नी] अनेक प्रकार माल गान हामरिल त  
 करती हु केवल उतासा की हकार होती हैं किमा भी तर पर गीत  
 गायक के शमिर पन्थ सुख का शाप नहीं कर गयी । उता अधि  
 कारणो गनान्त्रिक आत्मा को नहीं करने वाली पुत्र की माना को ही  
 जाना है । उसी तरह मोक्षमुखानुभव का महान अधिकार आत्मात्मन पुरुष  
 को ही होता है । उमका आशय यहा परमेष्ठियों के गुणानुवा का निषध  
 करना बिलकुल नहीं है । यह ना स्वरूप समाधि के पूर्व अभ्यास दशा म  
 निनात्र आवश्यक है ही किन्तु उम गुणानुवा का फलस्वरूप लीनता ही  
 है यही ध्यय होना चाहिये ।

व्यापुपापामकृत्त्वर्गितप्रकृतीना बन्धा न भवति ततः सिद्ध  
 रागद्वेषपतामर्जित ज्ञान न बन्धहेतु प्रत्युत तत्परानर्तराभिधयो  
 माक्षोपाया विदधानि । अतस्तादृज्ज्ञानमप्यदन मयमपि पुरय  
 निर्विकल्पस्यात्मान्यज्ञानादिगुणपरमत्रह्याणि द्रुत्या मरुत्तमहि  
 र्यप्रवृत्तिव्यावृत्त्या अपुन्यपरममाध त्रयधन् । तथा प्रयत्न  
 समुपपत्तिताना परीपहाणा विचये मोत्माहो ध य मन्यमानस्य  
 प्रमत्तात् यन्मुक्तिरन्याकरग्रहणायमरऽभ्यकरभवे मुक्त्य प्रय  
 तमानस्य मम पराक्षाकाल आयातः । नूनमद्येमा परीक्षासुक्ष्मीया  
 नादिमरद्वकुमारीन् हन्याऽव्यय सुखमराहन्मयमनुभविष्यामि ।  
 अथैतया रीत्या परीपहविजये प्रयतमान परनाभिर्विकल्प एव

प्राप्त करूंगा । अथवा उस तरह परापहा को जीवने में प्रयत्न करता हुआ  
 मैं समस्त विकल्प जाल में गिरित उस पराक्षा प्राप्त करूंगा । जहां ध्येय  
 [ ध्येय करने योग्य ] और ध्याता [ ध्यान करने वाले ] का भेद नहीं रह  
 जाता अर्थात् वह आत्माही ध्येय एवं ध्याता हो जायगा । ऐसा होने पर  
 अभाष्ट जो मोक्ष है वह निर्गुण रूप में क्षण भर में ही सिद्ध होजायगा ।  
 इस तरह यह भली भानी सिद्ध होगया कि चारित्र के बिना मुक्ति नहीं  
 हो सकता । एवं वीर ध्येयवान् पुरुषा द्वारा धारण किये जाने योग्य  
 चारित्रिके प्राप्तभूम भगवान्की भक्ति महान् -त्साह प्रदान करती है ।  
 तथा

को धारण करने वाले मोहनीय कम के परद को पाडने  
 ४ रग्नन वाला और मोक्ष का साक्षात् साधन निपा  
 करना है । जो अग्न होऽकी साधन्य  
 मोक्ष सुख को ज्ञानके प्रभाव से

मृगान्तदाऽऽत्मैव ध्येया त्वात्तऽऽत्मैव च जगत् ॥ १ ॥  
 महात्मविन्नतं च य एषा । सदा तस्मात् ॥ २ ॥  
 तस्मात्तत्त्वमसि शरीरं देहं ॥ ३ ॥  
 तदा ह्यवरोधं मोहपटलमेकैव विनाशयेत् ॥ ४ ॥  
 साधनञ्च स्वरूपमभावेनानुभवे ॥ ५ ॥  
 शिवमौल्यं ह भते ॥ ६ ॥  
 गायत्रोऽथैकनामिधम् ॥ ७ ॥  
 त्रिकारिणां त्रयस्य त्रिभिर्नामैः ॥ ८ ॥  
 त्रिभिर्नामैः त्रिभिर्नामैः ॥ ९ ॥  
 चिदपि बहूनामित्दसुखं ॥ १० ॥

जननं मृतमिधाय  
 तत्कालप्रभृति विपय-  
 गिणामारिणाम्प्रि-  
 प्त्यानिष्टनुद्धि मत्तयज्य  
 समाभ्यमुत्तारम पातु  
 मरुतस्य महात्मनो  
 सारमा धातिवर्माणि  
 च आत्मनो हित  
 त्वं सुखमात्मनः  
 नुप्य एव प्राप्तु

केवल परमेष्ठी का गुण गान करने वाले का  
 प्राप्त कर लेंगे । जिस प्रकार किम  
 गन्धमिथा (द्राक्षणी या मादनी) को  
 करनी हुई केवल वनामों की दृष्टि से  
 तबबू के अभितर अन्य सुख को  
 धारता । अतः कि आह्वार को  
 होता है । उसी तरह मे  
 को ही होता है । इसका आशय यना  
 करना बिलकुल नहीं है । वह तो  
 निनाम आशय है ही किन्तु हम  
 है यही ध्यय होता चाहिए ।

अथ न मन्वाद्य न  
 दृष्टा परिणामों से  
 उद्यमार्थों से  
 ही प्रयास के द्वारा  
 न का पान करने  
 न स शिख  
 है । श्री  
 ज्ञानमय  
 । व  
 म  
 । चतु  
 आधार



करणमर्ह्यत्यरिं तत्सुखं ल । न प्र परमे ३३ ॥ १८ ॥  
 निषिध्यत स तु स्वरूपमावशास्त्राया प्राग्विज्ञानतन्मावश्यक  
 एव पर तस्यफल स्वरूपमगवेश स ध्येया लभ्यरच । को हि  
 नाम पुंष फलमनाद्धर कन्तामुपवन मिश्रन् कष्टमव (निदधीत)  
 विदधात् । भो आत्मन् मनुजन्म दुर्लभम् तद्वापि शिवमीग्य  
 सप्तद्वार जिनद्वय दुर्लभतमं सप्राप्य योग्यदु स्वातुर्वादिषु विषय  
 ध्वमिमुख बलादज्ञानीभूय स्वर्णाविमर मुधा यापयाम । मनी दृष्ट  
 ममासादयता भोगेभ्यो रितस्य मात्मानुष्ठानानाठतया न  
 काञ्चदपि क्लेश प्रदुत ५ मान्दो जायत एव । यथा करिच  
 द्रमफलमुग्धतयाऽनशनत्रत विधाय स्वकीयां दृष्टिं देहान्त प्रविष्टां

ऐसा कौन बुद्धिमान ढागा न। फल चयन की इच्छा रखता हुआ  
 केवल धन की मीचता हुआ व्यय कष्ट उठाया। हे आत्मन् मनुष्य जन्म  
 पाना दुर्लभ है हममें भी शिवसुख ५० न करने वाला निनधमता अत्यन्त  
 दुर्लभ है। सा ऐस मनुष्य स म और निनधम न। अतायास प्राप्त अनन  
 ५ दुखों का करन वाला। यन्म भूलपर विवश हो अज्ञानी हाना हुआ  
 ही इस सुखभावमर न। स्वारहा है असार और भोगा म। परत हृय  
 ॥ १८ ॥ मनीचन - दृष्ट प्राप्त करन में सत्पर आत्मसाधन  
 में ही प्रमात्र निष्ठा रखन वाल लावन किसी भी प्रकार का क्लेश नहीं  
 हाता अभितु महान् अभूतपूर आनन्द आता है। जिस प्रकार काई व्यक्ति  
 धमफलक ज्ञान म उपवास धारण कर अपनी भावनाको शरीरक विषय में  
 ही फसाकर व्यय हा आनशयस्वा म दुखो ह ना दे तो होओ किन्तु जो  
 उपवासवन की धारण कर समीचीन शुद्ध भावना का आश्रय लेकर एसी

॥१॥ तैरित्येत चेकिन्तु ताम् स्मिन्तु योजनशम प्रत विधाय  
 मती गति मया यगति यद्य चन्याऽ मेतापत्तानमति विषय-  
 क्षयः पृथग्भूय विपत्तयः कन्मपित्तगिणामरिण्यम्भवि  
 विराजत मन् उते नस्मात् नरैरिदिरिणेऽपिष्टानिष्टबुद्धि मत्यज्य  
 मारिदमरेसुखविलक्षणमत्पाम-पन्द्राम मरियाभ्यसुधारम पातु  
 शरी । नूनमेतादृशी दृष्टिरनगतो विरतस्य महात्मनो  
 लोकोत्तराजन्तुत्वाद्ददति तेऽहं दत्तेजसात्मा घातिरर्माणि  
 इवा इतरमिति-र-रुद्राप्नोति । तथा च आत्मनो हित  
 हि हितम्, आत्मा च स्वयं हितस्वभाव तच्च सुखमात्मन  
 वैकल्यादस्वार्था, वैकल्या च चातुर्गतिवेषु मनुष्य एव प्राप्तु

प्रस्ता करता है कि मैं व्याज घ य हूँ जो आज तक अपने ने स्पर्श-धन  
 विषययोम प्रथम ॥ विषययोमा से कतुपिन हुए परिणामों से  
 निरने कम प्रगत म रहित हुआ है । इस लिय समस्त उद्य गर्थों म  
 इष्टानन्त बुद्धि का परित्याग कर समार के समस्त सभी प्रकार के सुखों  
 म निवृत्त चक्रवर्ती और दोन्नों को भी दुर्लभ समतामन रा पान करने  
 निय प्रयत्न करता ह । नि-क्य हा लेमी दृष्टि अशान भोजन से विरक्त  
 उपवास करने गन्तमागे अलौकिक आनन्द प्रदान करती है । उसी  
 अन्तिमक अपूर्व तेज आत्माचार घातिया कर्मों को नाश कर ज्ञानमय  
 हुना हुआ त नों हों को म दाख हो जाता है । इस प्रकार आत्मा का  
 दिग दो मन्धा सुख है, आत्मा स्वयं सुख गदाय है, उह हूँ आत्म  
 ॥ १॥ ( वेदत नान गय नशा ) ने है ता " वेदगधाथा चतु  
 नि गे जीसम मनुष्य हो जाति कर मन्ता है, मनुष्य शरीर आधार

ममर्थः, मनुष्यदहमाधश्चाहार\* अता यावतापनाहारण  
रत्नत्रयमाधनः। वास्यायपदनाववानचमताविधातो न स्यात्ता-२  
नोदर भुञ्जानस्य मे स्वरूपच्युतस्य स्वरूपायाप्तारचराय  
भवति। त दृष्टिमादधानाऽनाकुलमोक्ष्यमागति ।

( अपूर्ण )

आपार आहार है, इस लिये जिनसे थोड़े आहार से, रत्नत्रयप्राप्ति के हेतु  
भूत स्वाध्याय, धरना आदि। नित्य कर्मा की सामर्थ्य का विधान नहीं है। जिन  
आवश्यकता से कम [ भर पट नहीं ] आहार को भरत हुए स्वरूप से अ-  
मेरे चिरकालकालिय स्वरूप प्राप्ति हास्य, ऐसी भावना रखना हुआ ज  
आकुलता रहित मुखाका भागनवाला जाना है ।

( अपूर्ण )

\*स प्रकार अध्यात्मक्यागा नायनीथ पूज्य श्री मनोहर जी व  
'श्रामरनहजान-२' सताराने द्वारा धनप्रतिमा की अवस्था  
सन् १६५५ में विरचित दृष्टि नामक ग्रंथ अपूर्ण समाप्त हुआ ।



ओ म प्रिटिंग प्रेस, मेरठ ।

